Chapter-3

P/Th
11435

तृतीय अध्याय

ईसाई संदर्भ

तथा

मुस्लिम संदर्भ

विषयक

कुछ

अवधारणाएँ

प्रास्ताविक :

शैलेश मटियानीजी की जन्मभूमि कुमाऊँ प्रदेश हैं, अतः उसमें कुमाऊँ के जन-जीवन का उतर आना स्वाभाविक ही कहा जायेगा, और वह भी एक ऐसा लेखक जो जमीन से जुड़ा हुआ है, जमीनी वास्तविकताओं से पूरी तरह वाकिफ़ है। यह एक स्थापित तथ्य है कि कुमाऊँ प्रदेश में ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार काफ़ी रहा है और हिन्दू धर्म के उच्चवर्गीय लोगों द्वारा सताये गये कई लोगों ने ईसाई धर्म को अंगीकार किया है। स्वयं मटियानीजी के पिता भी ईसाई हो गए थे। अतः उनकी कहानियों में ईसाई संदर्भ भी प्राप्त होते हैं। हालाँकि ऐसी कहानियाँ कम हैं। अतः यहाँ ईसाई संदर्भ को भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में उकेरने का यत्न हुआ है। भारत में मुसलमानों का आगमन लगभग ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में ही हो गया था। किन्तु मोटे तौर पर उनका आगमन ग्यारहवीं शताब्दी से ही माना जायेगा। इस समय भारत में जो मुसलमान हैं, उन सभी के बापदादे बाहर से आये होंगे ऐसा नहीं है। वस्तुतः बाहर से आने वाले मुसलमान तो संख्या में बहुत कम रहे होंगे।

फिर सवाल यह खड़ा होता है कि इन मुट्ठी-भर मुसलमानों ने भारत पर कैसे कब्जा जमा लिया ? इसका उत्तर यह है कि अंग्रेज भी तो मुट्ठी-भर थे, बल्कि इनसे भी कम थे, पर उन्होंने भी तो भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित किया था। इसका कारण यह है कि वर्ण-व्यवस्था की अमानवीय भेद-नीति के शिकार बहुत-से लोग हो रहे थे और वे बरदाश्त करते गये। पर अब उन्होंने अपने सामने कोई दूसरा बेहतर विकल्प देखा, हजारों की संख्या में धर्मान्तरित हो गये। हजारों ऐसे लोगों ने उस समय इस्लाम कबूल किया होगा जिनकी यहाँ घोर अवमानना और उपेक्षा हो रही थी। मनुष्य होते हुए भी जो पशु से बदतर जिन्दगी जी रहे थे। सामाजिक-धार्मिक कारणों से जिन पर अत्याचार हो रहे थे, अन्याय हो रहे थे, शोषण हो रहा था। उनमें से अनेकों ने इस्लाम धर्म को अंगीकृत कर लिया होगा। फलतः मटियानी जी की कहानियों में मुसलमान-परिवेश का आना भी स्वाभाविक ही है। पर उनकी कहानियों में अधिकांशतः दलित-गरीब और निम्न तबके का मुस्लिम समाज ही दर्ज हुआ है। अतः यहाँ मुस्लिम संदर्भों पर भी विचार किया गया है।

ईसाई सन्दर्भ :-

ईसा-मसीह द्वारा प्रबोधित धर्म ईसाई धर्म है। पहले उसका प्रचार-प्रसार योरोप देशों में हुआ। योरोपियन जब अमरिका पहुँचे तो उनके साथ यह धर्म भी पहुँचा। इसी तरह वे लोग जब भारत आये तब उनके साथ ईसाइयत का भी प्रवेश भारत में हुआ। वस्तुतः उनके दो ही लक्ष्य थे - व्यापार और धर्म प्रचार। इस संदर्भ में मुस्लिम और ईसाई की प्रवृत्ति एक-सी है। हिन्दू धर्म वाले ''भागाकार'' में मानते हैं, इनको भगाओ, उनको भगाओ, ये अशुद्ध है, वो अशुद्ध है; जबकि ये दोनों धर्मवाले ''गुणाकार'' में मानते है। और दूसरी जातियों को, दूसरे लोगों को अपने में मिलाते जाओ, जोड़ते जाओ। बौद्ध धर्म की भी यही प्रकृति थी और इसीलिए वह

शायद ब्राह्मण-धर्मवालों को राश नहीं आया। कालीकट के राजा जामोरिन ने जब वास्को-डी-गामा को पूछा कि "कहाँ आये हो ?" तब उसने कहा था- "ईसाईयों और मसालों की खोज में।"[१] सचमुच यूरोपवाले दो कारणों से भारत की ओर प्रवृत्त हुए थे - एक तो ईसाइयत का प्रचार करने और दूसरे व्यापार द्वारा धन बटोरने।

भारत में यूरोप का आगमन :-

प्राचीनकाल से रोम और भारत एक-दूसरे से परिचित थे। सिकन्दर के समय यूरोप में भारत का नाम काफ़ी प्रसिद्ध था। वे भारत को धन और ज्ञान का आगार समझते थे। इस तरह लगभग ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से दोनों के बीच व्यापार संबंध थे और दोनों तरफ से विद्वानों का आवागमन भी होता था। इसीलिए कई यूनानी शब्द हमारी भाषा में घुल-मिल गये हैं। बहुत कम लोग शायद यह जानते हैं कि हमारा 'केन्द्र' शब्द यूनानी 'केण्टर' से निःसृत हुआ है। जमीन के रास्ते से यह आवागमन होता था। परंतु सन् १४५३ में आरबों ने कोन्सन्टीनोपल को जीत लिया और यह जमीनी रास्ता बन्द हो गया। हमारे देश से मसाले यूरोप में जाते थे। ठण्डा मुल्क होने के कारण उन्हें मसालों की बेहद जरुरत रहती थी। अतः भारत आने के लिए उन लोगों ने समुद्री रास्तों की तलाश की। इसके कारण उन्हें बहुत फायदा हुआ। दुनिया-भर के समुद्रों पर उनका कब्जा हो गया। हिन्दू और मुसलमान दोनों इस मामले में कच्चे थे। हिन्दू राजाओं को यह इल्म ही नहीं था कि समुद्र पर भी राज्य का कोई अधिकार होता है। पुर्तगाली लोग समुद्र पर अपना अधिकार जमाते गये और शीघ्र ही इस अवस्था में पहुँच गये कि उनके हुक्म के बिना अरब-सागर में कोई नाव तक चला नहीं सकता था। कहते हैं कि अकबर को भी अपनी नाव लाल सागर की ओर भेजने के लिए पुर्तगालियों से परवाना लेना पड़ता था।[२]

सन् १४९२ में कोलम्बस नामक स्पेन का व्यापारी भारत का पता

लगाने के लिए समुद्री मार्ग से निकला था और उसने अमरिका खोज निकाला और बहुत समय तक उसे वह भारत ही समझता रहा। वस्तुतः भारत आने का समुद्री मार्ग तो पुर्तगाल के वास्को-डी-गामा ने खोज निकाला। वह सन् १४९८ में मई की २७ या २८ तारीख के कालीकट आ पहुँचा। ऐसा कहा जाता है कि वास्को-डी-गामा का पथ-प्रदर्शक कोई अरबी मुसलमान था। रत्न स्वामी ने ''इण्डिया फ्राम द डान'' नामक पुस्तक में लिखा है कि यह मार्ग-प्रदर्शक गुजराती था। कालीकट का राजा वास्को-डी-गाँमा से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने पुर्तगाल के राजा को मित्रता का पत्र लिखा, परंतु पुर्तगाल के राजा ने उसे अपना उपनिवेश माना और एक बड़ा सा बेड़ा भारत भेज दिया कि ईसाइयत का प्रचार करो और जरुरत पड़े तो युद्ध भी।[३]

मालाबर तट के लोग व्यापार चाहते थे, अतः वे तो खुश हुए, लेकिन गुजरात के सुलतान महमूद बेगड़ा ने इस खतरे को पहले से ही भाँप लिया था। उसे आशंका थी कि ये पुर्तगाली कहीं अरब-सागर पर कब्जा न कर लें। अतः उसने समुद्र में उसके साथ की लड़ाइयाँ भी-लडीं, पर इनका कोई परिणाम नहीं आया और सन् १५१० ई. में फिरंगी गोवा में अपना किला बनाने में सफल हो गये। पुर्तगालियों के बाद होलेण्ड के डच लोग आये पर वे मलाया की ओर चले गये। उनके बाद फ्रान्सीसी लोग आये। उनके बाद लगभग सत्रहवीं शताब्दी में अंग्रेज आये। पुर्तगाल के फिरंगी, फ्रान्स के फ्रेन्च और अंग्रेजों के बीच में संघर्ष चलता रहा और मजे की बात तो यह है कि ये संघर्ष इन तीनों में इस बात को लेकर चला था कि इनमें से कौन भारतवासियों को सभ्य बना सकता है।[४]

अंग्रेजों का आगमन :-

अंग्रेज जाति का पहला व्यक्ति जो भारत आकर बसा उसका नाम टामस स्टीफेन्स था और वह ईसाइयत का प्रचार करने के उद्देश्य से सन् १५७९ ई. में गोवा आया था। उसने चालीस साल तक यहाँ ईसायित का

प्रचार-प्रसार किया। उसके बाद महारानी एलिजाबेथ का पत्र लेकर तीन अंग्रेज भारत आये और सम्राट अकबर के दरबार में उपस्थित हुए। ईस्ट इण्डिया कंपनी की स्थापना सन् १६०० ई. में हुई और उसके बाद सन् १६०८ ई. में जहांगीर ने कंपनी को सूरत में तम्बाकू की कोठी स्थापित करने की अनुमति प्रदान की, भारत में तम्बाकू का एक नाम "सूरती" भी है। वह इसी कारण प्रचलित हुआ। वस्तुतः अंग्रेज भारत में व्यापारार्थ आये थे, अतः प्रारंभ में उनका ध्यान राज्य-स्थापना या धर्म-प्रचार की ओर नहीं था। जो अंग्रेज यात्री भारत से लौटे उन्होंने वहाँ जाकर भारत का जो वर्णन किया उससे वहाँ के लोग दंग रह गये। यूरोपवालों के लिए भारत सोना चांदी, किनखाब, हीरा-जवाहरात और रेशम का देश था। यह ध्यान रहे १७ वीं शताब्दी का भारत मुगलों का भारत था, जो सोने से जगमगा रहा था। दो फ्रान्सीसी यात्री-टबर्नियर और बनिर्यर- ने भी भारत की समृद्धि का प्रचार यूरोप में किया। इससे सारा योरोप भारत आकर सोना लूटने के लिए बेकरार हो उठा। यह भी गौरतलब है कि ग़जनी के आक्रमण भी इसी कारण हुए थे। यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि गुजरात के सुबेदार बहादुरशाह से हुमायूँ की जो लड़ाई हुई थी, उसमें पुर्तगालियों ने बहादुरशाह का साथ दिया था। इसके पुरस्कार के एवज़ में शाह ने पुर्तगालियों को मुंबई और बसई के द्वीप दिये थे। यही मुंबई द्वीप बाद में सन् १६६१ ई. में इंग्लेंड के राजा को दहेज में प्राप्त हुआ था।[५]

बंगाल के एक सूबेदार ने एक अंग्रेज डाक्टर के इलाज से खुश होकर सन् १६५१ ई. में अंग्रेजों को हुगली में कोठी बनाने की अनुमति दे दी। सन् १६७९ ई. में औरंगज़ेब ने उन्हें हुगली नदी में जहाजों को चलाने का अधिकार भी प्रदान कर दिया। उक्त सूबेदार वाली घटना का बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण भगवती चरण वर्मा कृत "मुगलों ने सल्तनत बख़्श दी" नामक कहानी में किया है। इस कहानी में वर्माजी ने व्यंग्य के माध्यम से बताया है कि कैसे अंग्रेज बड़ी होशियारी और चालाकी से कलकत्ते से दिल्ली

तक पहुँच गये और कैसे उन्होंने बिना लड़े मुगल सल्तनत को अंग्रेजों के हवाले कर दिया।[६]

सन् १६९० ई. में कलकत्ते में अंग्रजों ने फोर्ट विलियम का निर्माण किया। अब उसके भीतर वे सैनिक रखने लगे और शनैः शनैः उनके मन में राज्य स्थापित करने का मनसूबा घर करने लगा। हालाँकि औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात केन्द्रीय सत्ता के कमजोर पड़ते ही उन्होंने अपने इस इरादे को अंजाम देने का काम शुरू किया। हिन्दुस्तान में राजनीतिक धाक जमाने वाली पहली लड़ाई अंग्रेजों ने सन् १७५७ में प्लासी के मैदान में जीती उसके बाद रही-सही कसर उन्होंने सन् १७६४ में बक्सर की लड़ाई जीतकर पूरी की। उस लड़ाई में भारतवासियों की हार का मतलब तमाम भारतीय शक्तियों का पराजय होना था। पराजित नवाब और बादशाह से इलाहाबाद में क्लाइव ने अपनी मनमानी शर्तें मंजूर करवायीं। इन शर्तों के तहत उन्हें बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी हासिल कर ली। भारत को पूरी तरह से फतह करने में अंग्रेजों को पूरे सौ साल लग गये। सन् १७५७ से १८५७ तक में उन लोगों ने हिन्दुस्तान में लगभग १११ छोटी-मोटी लड़ाइयाँ लड़ीं और हिन्दुस्तान पर अपनी सत्ता कायम की। सन् १८५७ तक भारत पर इस्टइण्डिया कंपनी का राज रहा और उसके बाद सन् १८५७ के विप्लव के असफल रहने पर ब्रिटिश साम्राज्य का राज स्थापित हो गया। उसके पश्चात-लगभग ९० साल बाद सन् १९४७ में भारत आजाद हुआ। अमरीकी दार्शनिक श्री विलियम डुराण्ट ने इस संदर्भ में कहा है - ''भारत विजय का काम धर्म और सभ्यता के सिद्धान्त से नहीं; डारविन और नीत्शे के सिद्धान्त जायज था। जिस जाति में अपना शासन आप चलाने की शक्ति नहीं रहती, जो जाति अपने धन-जन का आप विकास नहीं कर सकतीं और जिस देश का एक प्रान्त दूसरे प्रान्त को तथा एक जाति दूसरी जाति को बराबरी का दर्जा देने को खुद तैयार नहीं होती, वह जाति और देश उन लोगों का गुलाम होकर रहता हैं, जिन्हें लोभ की बीमारी और शक्तिमत्ता का रोग है।''[७]

इस दरमियान अंग्रेज तथा पोर्टुगीजों ने धन, सत्ता तथा हमारी कमजोरियों के कारण भारत में ईसाइयत का प्रचार-प्रसार किया और लाखों लोगों ने ईसाई धर्म को अंगीकृत किया। उन लोगों में अधिकांशतः वे लोग थे जिनको धर्म और शास्त्र के नाम पर खूब सताया जा रहा था और जिनके साथ बराबरी का व्यवहार तो क्या पशुओं से बदतर व्यवहार होता था। कुछ लोग ऐसा कहते है कि उन्हें धन-दौलत या नौकरियों का लालच दिया गया और इसीलिए उन्होंने धर्म-परिवर्तन किया, परंतु यह पूर्ण सत्य नहीं है। वस्तुतः ईसाई धर्मगुरुओं ने न उनके साथ मानवतापूर्ण व्यवहार ही किया, बल्कि उन्हें पढ़ने-लिखने की सुविधा प्रदान कर आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त किया जो सैंकड़ों वर्षों से अवरुद्ध हो गया था।

ईसाइयत का प्रचार-प्रसार :-

ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए उनके मिशनरी पादिरयों ने भगीरथ कार्य किया। इसके लिये उन्होंने भारत के अलग-अलग प्रान्तों की भाषा को न केवल सीखा, बल्कि उसमें महारत भी हासिल की। तमिल साहित्य में बेश्ची ने बड़ा काम किया। वह सन् १७०० ई. में मदुरा मिशन के तहत आया था और सन् १७४२ ई. में जब उसका निधन हुआ तब तमिल भाषा और साहित्य का वह सर्वश्रेष्ठ विद्वान माना जाता था। यह काम कोई जैसा-तैसा काम नहीं है। टामस स्टीफेंस जो सन् १५७९ में गोवा में आया था, उसने मराठी और कोंकणी पर संपूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। कोंकणी में उसने एक ईसा-पुराण लिखा जिसका उन दिनों यथेष्ट आदर हुआ था। मराठी भाषा की स्टीफेंस ने भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उसकी उपमा फूलों में जूही, पक्षियों में मोर और सुगन्धों में मुश्क से दी थी। जो काम दक्षिण की भाषाओं में मदुरा से हो रहा था, उसी प्रकार का काम बंगाल के सिरामपुर मिशन में हो रहा था। वहाँ हिन्दी, बंगला और उर्दू के लिए काम हो रहा था। सिरामपुर में मिशनरियों ने छापखाने खोले, अख़बार निकाले, पुस्तकें

लिखीं और गद्य में ढेर-सारा साहित्य प्रकाशित करवाया ।[८] जहाँ हमारे सनातनी ब्राह्मण संस्कृत भाषा पर कुंडली मारकर बैठ गये थे और अस्पृश्यों तथा छोटी जाति के लोगों को सुनने तक नहीं देते थे, वहाँ इन लोगों ने अपने धर्म के दरवाजे सब तरह से खोल दिये । न केवल अपनी भाषा उनको सिखायी, बल्कि उनकी भाषा सीखकर उनके दिलों तक पहुँचे । उनका मनुष्यता से परिचय करवाया, दूसरों की भाषा को अपनाने से और उन्हें इज्जत देने से क्या कुछ हो सकता है, उसकी मिसाल हमें इन मिशनरी धर्म-प्रचारकों में मिलती है ।

यहाँ एक बात की ओर मैं ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा कि हमारे उत्तरी-भारतीय मित्र हिन्दी के प्रचार-प्रसार की बात तो करते हैं, पर कितने हैं जो हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त तीसरी भाषा के रूप में दक्षिण की कोई भाषा सीखते हैं ।

वस्तुतः मूलभूत दृष्टि से कोई भी धर्म बुरा नहीं होता है । यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि अकबर ईसाई धर्म का भी प्रेमी था और इसलिए उन्होंने ईसाइयत के प्रचार में कोई रोड़ा नहीं अटकाया था ।[९]

ईसाई धर्म का उद्भव :-

संसार के सभी धर्मों में तीन धर्म अति प्राचीन हैं - हिन्दू धर्म, जरथुस्त्र धर्म और यहूदी धर्म । इनमें से प्रथम दो धर्म आर्यों के बीच उत्पन्न हुए और तीसरा धर्म सामी जाति के बीच जनमा । यह भी एक ध्यातव्य तथ्य है कि ये तीनों धर्म एशियाई मूल के हैं । एक तरह से देखा जाए तो ईसाइयत और इस्लाम दोनों धर्म का संबंध यहूदी धर्म से है । यहूदियों की तरह ईसा और मुहम्मद भी सामी जाति के सदस्य थे । यह भी एक विचित्र तथ्य है कि ईसाइयत और इस्लाम उभय में मूर्तिपूजा का विरोध मिलता है, परंतु सामी जाति घनघोर मूर्तिपूजक थी । मूर्तिपूजा को त्यागने का प्रथम उपदेश उनको सर्वप्रथम हजरत इब्राहीम ने दिया जिनको यहूदी परंपरा में आदि पैगम्बर माना

गया है । चूँकि हजरत इब्राहीम मूर्तिपूजा के विरोधी थे, मुसलमान भी उनकी पैगम्बरी में विश्वास करते हैं । इन्हीं एकेश्वरवादी हजरत इब्राहीम के खानदान में ईसाइयत तथा इस्लाम के प्रवर्तक ईसा और मुहम्मद दोनों पैदा हुए हैं । हजरत इब्राहीम के बड़े बेटे हजरत इसहाक के खानदान में हजरत दाऊद (David), हजरत ईसा और हजरत मूसा Moses) हुए हैं । हजरत मुहम्मद इब्राहीम के छोटे बेटे इस्माईल के वंश में हुए हैं । यहूदी धर्म के दो पैगम्बरों में हजरत दाऊद और मूसा के नाम आते हैं । ईसाई धर्म का धर्म-ग्रन्थ ''बाइबिल'' के दो प्रकार है- पुरानी बाइबिल (Old Testament) और नई बाइबिल (New Testament)। पुरानी बाइबिल का कुछ अंश हजरत दाऊद का और अधिकांश अंश हजरत मूसा द्वारा लाया हुआ है । ईसाई धर्म के प्रवर्तक हजरत ईसा और उनके द्वारा कही गयी ''नयी बाइबिल'' न्यू टेस्टामेन्ट कहलाती है । इन दोनों बाइबिलों के बीच बहुत कुछ ऐसा ''सम्बन्ध है जो संबंध वेद और उपनिषद अथवा वेद और बौद्ध धर्म में हो सकता है । किन्तु यहूदी लोग नयी बाइबिल को नहीं मानते । इसी प्रकार ईसाइयों का विश्वास पुरानी बाइबिल में नहीं है । मुसलमान जनता दाऊद, मूसा और ईसा को पैगम्बर जरुर मानते हैं, लेकिन इस्लाम यह नहीं स्वीकार करता कि हजरत ईसा परमात्मा के पुत्र थे । फिर भी इन पैगम्बरों के प्रति इस्लाम के बड़े ही आदरयुक्त भाव हैं । मुसलमान हजरत मूसा को ''कलीमुल्लाह'' (प्रभु से बातें करनेवाला), हजरत ईसा को ''रूहुल्लाह'' (प्रभु की आत्मा) और हजरत मुहम्मह को ''रसूलल्लाह'' (प्रभु का दूत) कहते हैं ।''[१०]

जिस प्रकार वैदिक धर्म की कर्मकाण्डीय जटिलता से ऊब कर बौद्ध धर्म का उदय हुआ, ठीक उसी प्रकार ''नयी बाइबिल'' में प्रतिपादित ईसाई धर्म भी यहूदी धर्म का सुधरा हुआ रूप है । वैदिक धर्म की भाँति यहूदी धर्म भी प्रवृत्ति-प्रधान (कर्मकाण्ड-प्रधान) था । इसके विरुद्ध ईसा का अनेक स्थानों पर उपदेश मिलता है जिसमें यज्ञ, पशुबलि तथा भौतिकता का विरोध

मिलता है। यथा- ''मुझे (हिंसाकारक) यज्ञ नहीं चाहिए , मैं ईश्वर की कृपा चाहता हूँ'' (मैथ्यू ९१/३) ''ईश्वर तथा द्रव्य, दोनों को साथ लेना संभव नहीं है।'' (मैथ्यू ६/२४) ''जिसे अमृततत्व की प्राप्ति करनी हो, उसे बाल-बच्चे छोड़कर मेरा भक्त होना चाहिए'' (मैथ्यू १९/२१) [११]

ईसाई धर्म और बौद्ध धर्म :-

बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म में बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है। जिस प्रकार वैदिक धर्म की कर्मकाण्डीय जटिलता के विरोध में बौद्ध धर्म उभरकर आया है, ठीक उसी प्रकार ईसाई धर्म भी यहूदी धर्म के विरोध में आया है। यहूदी धर्म में भी यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठानों का प्रचलन था। उनके उपास्य देव ''यहोवा'' थे और वे उनको संतुष्ट करने के लिए अग्नि में पशु या अन्य वस्तुओं का हवन करते थे। जबकि ईसाई धर्म में इसका विरोध पाया जाता है जिसे ऊपर निर्दिष्ट किया गया है। ''जीवों पर दया तथा सबके साथ मैत्री, करुणा और अहिंसा का व्यवहार, पाप से घृणा और पापी से प्यार, संन्यास और यती-वृत्ति, साधुओं का मठों में रहना और लम्बा झूल पहनना ये सारी बातें ऐसी हैं जिनका प्रवर्तन और प्रचलन जैन एवं बौद्ध साधुओं ने किया था।''[१२] जिस क्रास को ईसाई लोग शूली का प्रतीक मानकर धारण करते हैं, वह ''स्वस्तिक-चिह्न'' का ही रूप है। स्वस्तिक-चिह्न को वैदिक एवं बौद्ध धर्म वाले भारतीय ईसा के सैंकड़ों वर्ष पूर्व से पवित्र व शुभदायक मानते आये हैं। ईसा और बुद्ध के जीवन के कतिपय प्रसंगों में भी गजब का साम्य दिखता है। बुद्धत्व प्राप्ति के पहले बुद्ध को मार (कामदेव) की चढ़ाइयों का सामना करना पड़ा था। ईसा को भी शैतान द्वारा उन्हें लुभाने और विचलित करने के कई प्रयत्न होते हैं। सिद्धि-प्राप्त करने से पहले ईसा ने चालीस-दिनों का उपवास किया था और बुद्ध के विषय में भी यह कथा प्रचलित है कि निरंजना नदी के तट पर सुजाता के हाथों की खीर खाने के बाद से लेकर बुद्धत्व की प्राप्ति के समय तक (अर्थात् ४९ दिनों

तक) उन्होंने वायु के अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु का सेवन नहीं किया था। बुद्ध ने अंगुलिमाल डाकू का उद्धार किया था तथा अम्बपाली नामक वेश्या को संन्यासिनी बनाया था। ईसा के संदर्भ में भी ऐसी अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं जिनमें उन्होंने चोरों और वेश्याओं की भी सद्‌गति की है। स्वामी विवेकानंद की पुस्तक "द मैसेज आफ इण्डिया" में कहा गया है - "There was a book written a year or two ago by a Russian gentleman, who claimed to have found out a very curious life of Jesus christ and in one part of the book he says that christ went to the temple of Jagannath to study with the Brahmins, but became disgusted with their exclusiveness and their idols and so he went to the Lamas of Tibet instead, became perfect and went home."[१३]

अतः बाह्य सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को छोड़कर बहुत-सी चीज़ों में इन दो धर्मों के बीच समानता के दर्शन होते हैं।

ईसाई धर्म (Christianity) के कुछ बुनियादी सिद्धान्त :-

ईसाई धर्म का उद्‌भव लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व पैलेस्टाइन में हुआ था। इस धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह थे यह निर्दिष्ट किया जा चुका है। ऐसा माना जाता है कि ईसाई धर्म यहूदी धर्म और बौद्धमत का मिश्रित एवं रूपान्तरित स्वरूप है। ईसाई धर्म के सारे सिद्धान्त हमें बाइबिल में मिलते हैं। बाइबिल के भी दो भाग हैं - पुरानी बाइबिल (Old Testament) और नयी बाइबिल (New Testament)। यह पहले बताया जा चुका है कि पुरानी बाइबिल यहूदी धर्म के पैगम्बर हजरत दाऊद तथा हजरत मूसा द्वारा लिखी गई है और नयी बाइबिल में ईसा के उपदेश हैं। यहूदी लोगों का विश्वास पुरानी बाइबिल पर है, जबकि ईसाई लोग नयी बाइबिल को मानते हैं। यद्यपि ईसाई धर्म यहूदी धर्म का परिष्कृत माना जाता है तथापि इस धर्म

पर यूनानी दर्शन एवं विचारधारा का भी प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। उसके अनेक तत्व जैसे व्यक्ति की स्वतंत्रता, मानवतावाद, समानता एवं भाईचारे की भावना, तार्किकता एवं वैचारिक स्वतंत्रता आदि को ईसाई धर्म ने भी अंगीकार किया है। ईसाई धर्म पर बौद्धमत का भी काफी प्रभाव हैं, क्योंकि ईसाई धर्म का जहाँ उद्भव हुआ वहाँ बौद्ध साधुओं का ईसा-पूर्व से आना-जाना था। प्रारंभिक ईसाई धर्म में त्याग, संन्यास एवं साधना को विशेष महत्व दिया जाता था जिसे हम बौद्धमत का प्रभाव कह सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ईसाइयों ने दीक्षा देने की प्रथा भी बौद्ध धर्म से ग्रहण की होगी। ईसाई धर्म और इस्लाम में भी काफी साम्य नज़र आता है। दोनों ही एकेश्वरवाद में विश्वास करतें हैं, दोनों में ही मूर्तिपूजा का विरोध पाया जाता है। किन्तु इन दोनों में धर्म-प्रचार को लेकर काफी संघर्ष और युद्ध होते रहे हैं, जिन्हें इतिहास में ''धर्मयुद्ध'' (cruseds) का नाम दिया गया है। आज भी अरब राष्ट्रों एवं इजराइल का युद्ध मूलतः दोनों धर्मों के संघर्ष का ही परिणाम है।

वर्तमान संदर्भ में देखें तो ईसाई धर्म मुख्यतः दो भागों में विभक्त नज़र आता है - कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेण्ट। किन्तु इन दोनों की आत्मा अविभक्त है। ईसाई धर्म अपने अनुनायियों को दश आदेशों (Ten commandments) का पालन करने का निर्देश देता है। ईसाई धर्म हिंसात्मक यज्ञों का विरोधी है। वह दया, प्रेम, समानता एवं भाईचारे के सिद्धान्तों में विश्वास करता है। ईसा ईश्वर की दिव्य शक्ति में विश्वास करने, एकनिष्ठ बने रहने, सबके प्रति दया करने, कष्ट में सहयोग देने एवं मुस्कुराते रहने तथा नेक व ईमानदार बने रहने का उपदेश देते हैं। ईसाई धर्म संन्यास में विश्वास करता है। ईसा कहते हैं- ''जिसे अमृत्व की प्राप्ति करनी हो उसे बाल-बच्चे छोड़कर मेरा भक्त होना चाहिए।'' ईसाई धर्म यह भी मानता है कि ईश्वर मानव-कल्याण के लिए समय-समय पर पृथ्वी पर आता रहता है। इस प्रकार मूलतः ईसाई धर्म ईसा के उपदेश, बाइबिल तथा ईश्वर एवं उसकी दिव्य शक्ति में आस्था

रखने पर जोर देता है ।[१४]

ईसाई धर्म की कुछेक विशेषताएँ :-

ईसाई धर्म की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

(१) एकेश्वरवाद :-

इस्लाम की तरह ईसाई धर्म भी एक ईश्वर में विश्वास करता है । ईश्वर मनुष्यों के कष्टों को दूर करने के लिए अपने किसी पैगम्बर को भेजता है या वह स्वयं अपने पुत्रों के माध्यम से इस जगत में आता है । ईश्वर दिव्य शक्ति से परिपूर्ण एक अलौकिक शक्ति है । वह पिता के समान सभी मनुष्यों का पालन-पोषण करता है । वह मनुष्यों पर, बल्कि प्राणी मात्र पर दया करता है और उनके हृदयों को शुद्ध करता है ।

(२) ईसा मसीह में विश्वास :-

ईसाई धर्म ईसा मसीह पर विश्वास करने पर जोर देता है । इसमें ईसा को ईश्वर की क्रियात्मक शक्ति माना गया है । ईसा ईश्वर के पुत्र एवं दूत हैं । उनको मानव-कल्याण के लिए ईश्वर द्वारा पृथ्वी पर भेजे गये हैं । ईसा की शरण में जाने पर ही मनुष्य का कल्याण संभव है । ईसाई धर्म ईसा के उपदेशों में विश्वास करने पर जोर देता है । इस प्रकार ईसाई धर्म हिन्दुओं के अवतारवाद एवं इस्लाम की पैगम्बरी परंपरा के अनुरूप है । परंतु अवतारवाद में जहाँ ईश्वर स्वयं अवतार धारण करके आते हैं, ऐसा यहाँ नहीं है । यहाँ ईश्वर अपने पुत्र या दूत को भेजते हैं । ईश्वर तो एक ऐसा दिव्य और अलौकिक तत्व है जो न कभी जन्म लेता है न धारण करता है ।

(३) आत्मा की पवित्रता :-

ईसाई धर्म आत्मा में विश्वास करता है । यह आत्मा ईश्वर का ही रूप एवं शक्ति है । अतः आत्मा का पवित्र होना अत्यन्त आवश्यक है । हमारे

संत भी कहते हैं- मन चंगा तो कथौती में गंगा। कबीर कहते हैं -

''कबिरा मन निर्मल भया, ज्यों गंगा का नीर।

पाछे पाछे हरि चले कहत कबीर कबीर।''[१५]

ईसाइयत में ''बपतिस्मा'' नामक संस्कार के द्वारा व्यक्ति को पवित्र किया जाता है। यह हिन्दुओं के उपनयन संस्कार से मिलता-जुलता है। परंतु फर्क यह है कि बपतिस्मा का अधिकार प्रत्येक ईसाई को है, जबकि हिन्दुओं में ऐसा नहीं है। पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया गया है कि डॉ. बाबासाह आंबेड़कर ने अपने शोधपूर्ण ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है कि पहले यह अधिकार शूद्रों को भी था, किन्तु परवर्ती पुराण काल में शूद्रों पर शिकंजा कसता गया और शूद्रों और स्त्रियों को इस अधिकार से वंचित किया गया। यह भेदनीति ही भारत की पराधीनता का मुख्य कारण है। ईसाइयों में ''बपतिस्मा'' के द्वारा व्यक्ति की आत्मा को उस पवित्र आत्मा के निकट लाया जाता है।

(४) त्रियकवाद (Trioism) :-

ईसाई धर्म ''त्रियकवाद'' में विश्वास करता है। ''त्रियकवाद'' का अर्थ है ईश्वर, ईसा तथा पवित्र आत्मा पृथक-पृथक न होकर एक ही है, केवल उनके रूप भिन्न हैं। हमारे यहाँ भी आत्मा-परमात्मा की अभिन्नता को घोषित किया गया है।

(५) चर्च की सत्ता :-

ईसाई धर्म में चर्च महत्त्वपूर्ण पक्ष है। चर्च के माध्यम से ही ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। चर्च को ईसा का शरीर माना गया है। उसमें पवित्र आत्मा निवास करती है। चर्च में ही ईसाइयों के धार्मिक अनुष्ठान संपन्न होते हैं। प्रत्येक ईसाई के लिए चर्च की सदस्यता अनिवार्य है। ईसाइयों में जो महत्त्व चर्च का है, कुछ-कुछ वैसा ही महत्त्व बौद्ध धर्म में

''संघ'' का है। तभी तो कहा गया है - ''संघं शरणम् गच्छामि''। हिन्दुओं में मंदिर को पवित्र और ईश्वर का निवास माना जाता है, किन्तु अनुष्ठान विषयक अवधारणा बिल्कुल वैसी नहीं है जैसी ईसाइयों के यहाँ है। हिन्दुओं में परंपरागत विवाह अधिकांशतः मंदिरों में नहीं होते हैं, बल्कि कई बार ''प्रेम-विवाह'' करने वाले युग्म ही मंदिरों में विवाह करते हैं। ईसाइयों में दो प्रकार के विवाह प्रचलित हैं- (१) धार्मिक विवाह और (२) सिविल मैरिज। धार्मिक विवाह चर्च में संपन्न होते है और ''सिविल मैरिज'' रजिस्ट्रार के कार्यालय में होते है। दूसरे, प्रत्येक हिन्दू के लिए मंदिर की सदस्यता भी अनिवार्य नहीं है, बल्कि कुछ हिन्दुओं को तो ''मंदिर-प्रवेश'' का अधिकार ही नहीं था। डॉ. बाबासाहब आंबेड़कर आजीवन इस अधिकार के लिए संघर्ष करते रहे हैं। तीसरे ईसाइयों में केवल दो ही प्रकार के चर्च पाए जाते हैं - (१) मैथोडिस्ट और (२) कैथोलिक; जबकि हिन्दुओं में तो असंख्य देवी-देवताओं के मंदिर होते हैं।

(६) धार्मिक अनुष्ठान :-

ईसाई धर्म में प्रमुख पाँच अनुष्ठान होते हैं - (१) बपतिस्मा (२) पुष्टिकरण (३) आत्म-निवेदन (४) पवित्र संचार (५) विवाह। बपतिस्मा द्वारा एक व्यक्ति को ईसाई धर्म स्वीकार कराया जाता है और उसे पवित्र आत्मा के नजदीक लाया जाता है। यह हिन्दुओं के उपनयन यज्ञोपवीत संस्कार के समान है, किन्तु जो अंतर है उसे ऊपर निर्दिष्ट किया गया है। मुसलमानों में इसके लिए सुन्नत करवायी जाती है। बपतिस्मा के बाद बालक को गिरजाघर की सदस्यता प्राप्त हो जाती है, जहाँ उसे प्रति रविवार को जाना होता है। यह अधिकार या संस्कार बालक-बालिका दोनों के लिए होता हैं, जबकि हिन्दुओं में कन्याओं को उपनयन संस्कार का अधिकार नहीं है। पुष्टिकरण एवं आत्मनिवेदन के द्वारा व्यक्ति ईश्वर की शरण में जाता है, अपना समर्पण करता है और अपने द्वारा किए गए पापों का स्वीकार कर

पश्चाताप करता है तथा ईश्वर से क्षमा-याचना करता है। मुसलमानों में इसे 'तौबा करना' कहते है। हिन्दुओं में भी पाप के प्रायश्चित की व्यवस्था है किन्तु वह बहुत ही जटिल एवं भेदभावपूर्ण है। पवित्र संचार सामूहिक पूजा एवं भोज के रूप में मनाया जाता है। इसके द्वारा ईश्वर की उपस्थिति एवं विशेषताओं को स्वीकार किया जाता है। इस अनुष्ठान का उद्देश्य चर्च एवं सामूहिक जीवन के महत्त्व को स्वीकार करना भी है। विवाह भी पवित्र जीवन व्यतीत करने, यौन इच्छाओं की पूर्ति करने, परिवार की स्थापना करने एवं सहयोग पैदा करने के लिए आवश्यक माना जाता है। इन सभी अनुष्ठाओं द्वारा व्यक्ति अपने जीवन को परिष्कृत एवं परिमार्जित करता है।

(७) मूर्तिपूजा का विरोध :-

ईसाई धर्म मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करता। वह अलौकिक एवं निराकार ईश्वर में विश्वास करता है। इसलिए ईसाईयों में हिन्दुओं की तरह मूर्तिपूजा नहीं पायी जाती। इस अर्थ में वह इस्लाम के अधिक नजदीक है।

(८) समानता तथा भ्रातृत्व :-

ईसाई धर्म भी इस्लाम की भाँति-समानता एवं भाईचारे के सिद्धान्त में मानता है और उस पर पूरी तरह से आधारित है। ईसाई धर्म को मानने वाले सभी समान एवं परस्पर भाई है। उनमें किसी प्रकार का ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है। ईसाई धर्म मानवतावाद में विश्वास करता है। वह मानव-मात्र की भलाई, कल्याण एवं सेवा पर जोर देता है। ईसा कहते हैं कि सभी मनुष्य एक ही परम पिता परमेश्वर की सन्तान है, सभी आपस में भाई-भाई हैं तथा समान है। दीन-दुखियों की सेवा की ईश्वर ही सच्ची सेवा है।[१६]

ईसाई परिवार (Cristian Family) :-

व्यक्ति से परिवार और परिवारों से समाज का निर्माण होता है, इस

प्रकार परिवार समाज का एक अभिन्न घटक है । मानव की विभिन्न आवश्यकताओं ने विवाह और परिवार के विकास में योग दिया है । परिवार में व्यक्ति का जन्म, समाजीकरण और उसके व्यक्तित्व का विकास होता है । परिवार समाज की निरन्तरता को बनाये रखता है । और इस प्रकार वह सभ्यता और संस्कृति की रक्षा में अपूर्व योग देता है । ईसाइयों में भी परिवार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । भारत में साधारणतया चार प्रकार के ईसाई परिवार पाये जाते हैं : (१) वे जो यूरोप-निवासियों की भारत में बसी हुई सन्तानों से बने हैं, (२) वे जो हिन्दुओं तथा मुसलमानों से धर्म-परिवर्तन द्वारा बने ईसाइयों अथवा उनकी सन्तानों से बने हैं, (३) वे जो प्रथम और द्वितीय प्रकार के ईसाइयों की मिश्रित संतानों से बने हैं तथा (४) वे जो ऐसे आदिवासियों से बने हैं जिन्होंने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया है और ईसाई बन गये हैं ।

उपर्युक्त चार प्रकार के परिवार एक-दूसरे से कुछ भिन्नता लिए हुए हैं और उनकी कुछ अलग पहचान और विशेषताएँ भी हैं । प्रथम श्रेणी के परिवार यूरोपीय परिवार की विशेषताओं से युक्त है और उक्त चारों में स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं । यथा- संभव उनमें विवाह भी उन्हीं लोगों के बीच होते हैं । तीसरी श्रेणी के परिवार (एंग्लो-इण्डियन) अपने आपको दूसरी और चौथी श्रेणी के परिवारों से उच्च मानते हैं । दूसरी श्रेणी के धर्म-परिवर्तन के आधार पर बने हुए ईसाई परिवार अपनी भारतीय परंपराओं को पूरी तरह छोड़ नहीं पाये हैं, यद्यपि इनके द्वारा पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को अपनाए जाने का प्रयास निरंतर हो रहा है । चौथी श्रेणी के जन-जातियों से बने ईसाई परिवार अपनी स्वयं की पारिवारिक विशेषताओं को बनाए रख सके हैं और उनकी जीवन-पद्धति भी अन्य तीनों श्रेणियों के परिवारों से भिन्न प्रकार की है ।

ऊपर ईसाई धर्म की विशेषताओं के अंतर्गत निर्दिष्ट किया जा चुका है कि ईसाई धर्म में किसी प्रकार का ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है, तो फिर

ऊपर जो बात कही गई है, वह क्या है ? वस्तुतः ईसाई धर्म इस प्रकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं करता, परंतु यह देशकाल का प्रभाव है। किन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि हिन्दुओं में जो जातिगत, ऊँच-नीच और भेदभाव की जो दिवारें है, उतनी ऊँची दीवारें उसमें नहीं हैं। उन्हें दीवारें न कहकर ''बाउण्डरी वाल्स'' कह सकते हैं। वहाँ अस्पृश्यता या मंदिर-अप्रवेश चर्च में प्रवेश-वर्जना जैसी बातें नहीं है। इन परिवारों में शायद बेटी-व्यवहार नहीं होता। दूसरे सब व्यवहार चलते हैं।

अन्य परिवारों के समान ही ईसाई परिवार में भी विवाह सम्बन्ध (Marriage relationship) पाया जाता है और विवाह के द्वारा ही परिवार का जन्म होता है। परिवार में वंश-नाम प्राप्त करने की भी एक निश्चित व्यवस्था होती है। ईसाइयों में भी वंशनाम की पितृवंशीय व्यवस्था पायी जाती है। परंतु मालाबार में कुछ ईसाई परिवारों में मातृवंशीय वंश-नाम की परंपरा भी मिलती है। यहाँ पर बच्चे माता के वंश से वंश-नाम प्राप्त करते हैं। वस्तुतः यह द्रविड़ परंपरा है। प्रत्येक परिवार के लिए कोई-न-कोई आर्थिक व्यवस्था (Economic provision) भी होती है जिसके माध्यम से सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और बच्चों का पालन-पोषण करते हैं। प्रत्येक ईसाई परिवार के लिए घर या सामान्य निवास-स्थान (A common habitation) की व्यवस्था भी होती है। इनमें पितृस्थानिक (Patrilocal) व्यवस्था पायी जाती है; अर्थात् विवाह के पश्चात वधू अपने पति के परिवार में निवास करती है।

ईसाई परिवार की कुछेक विशेषताएँ :-

उपर्युक्त विवेचन में ईसाई परिवार की एक सामान्य अवधारणा दी गई है, यहाँ पर उसकी कुछेक विशेषताओं को विश्लेषित करने का उपक्रम है। ईसाई परिवार में प्रमुखतः निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं -

(१) पितृसत्तात्मक व्यवस्था :-

ईसाईयों में परिवार की व्यवस्था पितृसत्तात्मक होती है। परिवार में कर्ता के रूप में पुरुष का विशेष महत्त्व होता है। परिवार की संपत्ति पर उसका नियंत्रण होता है। इसमें वंश-परंपरा भी पिता के नाम से चलती है। प्रत्येक व्यक्ति के नाम में पिता के नाम का प्रथमांश जुड़ा रहता है।

(२) सम्मिलित आय का अभाव :-

हिन्दुओं में संयुक्त परिवार की प्रथा प्रायः पायी जाती है। ईसाई परिवार में प्रायः इसका अभाव-सा दिखता है। हिन्दू संयुक्त परिवारों के समान ईसाई परिवार का एक सामान्य (common) कोष नहीं होता, अर्थात् सभी सदस्य अपनी आय परिवार के प्रमुख (Head of the Family) के पास जमा नहीं करते हैं। ईसाई परिवार प्रायः एकाकी परिवार होता है, अर्थात् पति-पत्नी और बच्चे, अतः उनमें सम्मिलित आमदनी का प्रश्न नहीं उठता है। बच्चे जब बड़े हो जाते है और जब उनकी शादी हो जाती है, तब उनका परिवार अलग होता है। जहाँ अनेक भाई अपने माता-पिता के साथ रहते हैं और वे अलग-अलग व्यवसाय में लगे होते हैं, और उनकी अपनी वैयक्तिक कमाई होती है तब वे उस कमाई को अपनी-अपनी पत्नियों और बच्चों पर खर्च करते हैं। ऐसे परिवार में सर्व-सामान्य खर्च चलाने के लिए वे लोग अपनी आमदनी का कुछ निश्चित हिस्सा अपने पिता को देतें हैं। आय पर व्यक्तिगत अधिकार होने के कारण ईसाई परिवारों में पैतृक अचल-संपत्ति जैसी कोई चीज़ प्रायः नही होती है।

(३) सम्मिलित संपत्ति का अभाव :-

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, ईसाई परिवार प्रायः एकाकी परिवार होते हैं, उनमें सम्मिलित संपत्ति या पैतृक संपत्ति का प्रायः अभाव-सा दृष्टिगोचर होता है। जहाँ बहुत से भाई अपने माता-पिता के साथ एकत्रित

रहते हैं, वहाँ वे उनकी मृत्यु के उपरान्त शीघ्र ही संपत्ति के विभाजन की बात करते है। माता-पिता की संपत्ति पर सब बच्चों का समान रूप से अधिकार होता है। इस प्रकार ईसाई परिवार एक प्रकार के "पंछी-दर्शन" पर विश्वास करते हैं। माता-पिता की जिम्मेदारी संतानों के बड़े होने तक होती है, जैसे ही वे उड़ने लगते हैं, अपने अलग घोंसला का निर्माण वे कर लेते हैं।

(४) परिवार का लघु-आकार :-

ईसाई परिवारों का आकार प्रायः छोटा होता है। हमारे यहाँ सरकारी कार्यालयों और दफ़तरों में प्रायः परिवार की यही परिभाषा मिलती है- पति, पत्नी और बच्चे। इन लोगों पर आधुनिक शिक्षा, पाश्चात्य विचारों तथा आदर्शों का गहरा प्रभाव पाया जाता है। वैयक्तिक स्वतंत्रता को ईसाई लोग अधिक महत्त्व देते है। विवाह के उपरांत लड़का अपने पिता के परिवार में रहने के बजाय अपना खुद का नया घर बनाकर अपनी पत्नी के साथ उसमें रहना अधिक पसंद करता है। पति-पत्नी स्वयं अपना नया परिवार बसा लेते है जिसे नवस्थानिक परिवार कहा जाता है। हिन्दू परिवारों में पहले तो संयुक्त-परिवार की प्रथा थी, परंतु अब धीरे-धीरे उनमें भी विभक्त परिवार की अवधारणा बढ़ रही है। जहाँ ऐसा नहीं हो पाता है, वहाँ प्रायः पत्नी पति को अलग होने के लिए उकसाती रहती है और उसमें तहर-तरह के कलह भी होते हैं। हिन्दुओं में उच्च और मध्य उच्चवर्ग के लोग अब प्रायः अपनी मरजी से बेटे-बहू के अलग निवासस्थान की व्यवस्था कर देते हैं। ईसाई परिवार अपने रहन-सहन के स्तर (Living standard को ऊँचा बनाए रखने के उद्देश्य से परिवार-नियोजन को उपयुक्त समझते हैं। इस दृष्टि से ये लोग "परिवार-नियोजन" से सम्बद्ध उपकरणों का प्रयोग भी निस्संकोच करते हैं। पहले चर्च ने उसका विरोध किया था, विशेषतः कैथालिक चर्च ने, परंतु अब उसे स्वाभाविक माना जाता है।

(५) वैयक्तिक आधार :-

ईसाई परिवार व्यक्तिवाद पर आधारित है। अतः उसमें प्रायः सम्पूर्ण परिवार के हितों को लक्ष्य में न रखकर व्यक्तिगत सुख सुविधाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसी व्यक्तिवादी विचारों के कारण विभिन्न सदस्यों के विचारों एवं उद्देश्यों में भिन्नता पायी जाती हैं। व्यक्तिवादी चिंतन से युक्त सदस्य अपनी वैयक्तिक महत्वाकांक्षाओं के विषय में अधिक सोचते हैं। अपने व्यक्तिगत हितों के सामने परिवार के हित उनके लिए नगण्य-से होते हैं। ऐसे परिवार में व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण उसकी वित्तीय-क्षमता पर निर्भर करता है। इसी कारण ही ईसाई परिवार में सम्मिलित और सम्मिलित संपत्ति की विभावना का भी प्रायः अभाव-सा दिखाई पड़ता है। वस्तुतः प्राचीन काल और मध्यकाल में हिन्दुओं में कृषि, व्यापार और व्यवसाय परिवार के केन्द्र में थे। परिवार के सदस्य प्रायः पैतृक व्यवसाय में ही लग जाते थे। पढ़-लिखकर नौकरी करना या कोई और व्यवसाय करना, यह बात उस समय नहीं थी, अतः संयुक्त-परिवार की विभावना कायम थी। परंतु अब परिवर्तित स्थितियों में हिन्दू-परिवारों में भी उपर्युक्त व्यक्तिवादी चिंतन और विभक्त-परिवार की विभावना दिनोंदिन बढ़ रही है।

(६) समानता के सिद्धान्त पर विशेष बल :-

ईसाई परिवार में पारिवारकि संबंध समानता के सिद्धान्त पर आधारित होते हैं। ऐसे परिवार का प्रधान कोई पुरुष होता है, परंतु वहाँ वैचारिक स्वतंत्रता की गुंजायश होती है, वह परिवार या घर का निरंकुश शासक नहीं होता। जैसा कि ऊपर बताया गया है ईसाई परिवार भी पितृसत्ताक होता है, किन्तु बावजूद उसके उसमें लड़कियों को भी उतनी ही स्वतंत्रता होती हैं, जितनी लड़कों को। लड़की-लड़के में जो असमानता हिन्दू (विशेषतः सवर्ण हिन्दू परिवार) परिवारों में पायी जाती है। ईसाई परिवारों में पारिवारिक मामलों में स्त्री और बच्चों को भी महत्व दिया जाता है। परिवार के विभिन्न

सदस्यों के बीच मित्रतापूर्ण दृष्टिकोण पाया जाता है । उसमें परस्पर को समझने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है । हमारे यहाँ कहा तो गया है- ''प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्र-मित्र वदाचरेत्'', परंतु व्यवहारतः उसका उल्टा ही दिखाई पड़ता है । हमारे यहाँ के मां-बाप सोलह साल के बाद ही (अर्थात् बच्चे के सोलह साल) माँ-बाप बनते है, जबकि उस समय उन्हें मित्र बनना चाहिए। और दूसरी बात यह कि उपर्युक्त बात भी ''पुत्र'' के संबंध में कही गयी है, उसमें पुत्री का उल्लेख नहीं है । फलतः ईसाई परिवार में अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक संबंध पाये जाते है । ''सास बहू और साजिश'' के मामले वहाँ प्रायः कम ही मिलते हैं । परिवार में सदस्यों के विचारों का आदान-प्रदान, एक साथ उठना-बैठना और खाना-पीना होता है । अतः ऐसे परिवारों में सदस्यों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र परिवेश मिलता है, जिसके कारण वे अपनी स्वाभाविक क्षमताओं का विकास, अधिक सफलतापूर्वक कर पाते है। परंतु यहाँ स्वतंत्रता के स्वच्छंदता में परिवर्तित होने का संकट भी बना रहता है ।

(७) स्त्रियों की स्थिति :-

यद्यपि ईसाई परिवार पितृसत्तात्मक होते हैं, तथापि उसमें स्त्रियों की स्थिति प्रायः पुरुषों के समान ही पायी जाती है । आर्थिक-सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्रियाओं में पुरुषों के समान ही स्त्रियाँ भी हिस्सा ले सकती हैं । लड़कियों को भी लड़कों के समान ही शिक्षा-प्राप्ति और व्यक्तिगत विकास का अवसर दिया जाता है । हमारे यहाँ सवर्णों में तो शिक्षा का सवाल ही नहीं था और सवर्णों में नारी-शिक्षा की मुहिम १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से शुरू हुई है । और अभी कुछ वर्ष पूर्व तक गावों में तो अभी भी, शिक्षा के कुछ क्षेत्र लड़कियों के लिए वर्जित माने जाते थे । टेकनोलोजी फैकल्टी, पोलिटेकनिक और फार्मसी इत्यादि को इसीलिए ''बजरंग'' कहा जाता था। आर्थिक दृष्टि से भी ईसाई परिवारों में स्त्री-पुरुष का भेद कम नज़र आता है ।

वहाँ स्त्री भी कोई-न-कोई कार्य अवश्य करती है । फलतः वह आत्म-निर्भर होती है और इसीलिए अधिक स्वतंत्र भी । वहाँ स्त्री पुरुष के पैरों की जूती नहीं होती । इन लोगों में स्त्रियों का नौकरी करना किसी लिहाज से बुरा नहीं माना जाता । हमारे यहाँ अब मध्यवर्ग और उच्च मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग में तो स्त्रियों का नौकरी करना बुरा नहीं माना जाता है, बल्कि नौकरीशुदा लड़की जल्दी शादीशुदा भी हो जाती है, परंतु उच्चवर्ग में स्त्रियों का काम करना आज भी अच्छा नहीं माना जाता है । और जहाँ स्त्रियाँ नौकरी करती है वहाँ भी उनको दोहरा बोझ ढोना पड़ता है, क्योंकि पुरुष अभी उस मध्यकालीन सामंतीय वातावरण से मुक्त नहीं हो पाये है । ईसाई परिवार की स्थिति यहाँ अच्छी है । उसमें स्त्री यदि नौकरी करती है तो पुरुष प्रायः उसके काम में हाथ बंटाता है और उसमें अपनी हेढी नहीं समझता है । ईसाई परिवारों में बालकों का पालन-पोषण, उनकी शिक्षा का प्रबंध एवं नाना प्रकार के अन्य पारिवारिक दायित्वों का प्रबंध केवल पुरुष की जिम्मेदारी न रहकर, पति-पत्नी दोनों की संयुक्त जिम्मेदारी रहती है । दोनों ही इस दिशा में समान रूप से प्रयत्नशील रहते हैं ।

(८) अन्य कतिपय विशेषताएँ :-

इनके अतिरिक्त ईसाई परिवारों में निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं :-

(१) ईसाई परिवारों में बाल-विवाहों का प्रचलन नहीं है ।

(२) उन लोगों में पर्दा-प्रथा का भी अभाव है ।

(३) विधवा-विवाह मान्य है ।

(४) तुलनात्मक दृष्टिसे स्त्री को अन्य समाजों से अधिक स्वतंत्रता और समानता का दरज्जा हासिल है ।

(५) स्त्री को भी पुरुषों के समान सांपत्तिक अधिकार प्राप्त है ।

(६) इसमें विलम्ब-विवाह को बुरा नहीं माना जाता ।

(७) इन लोगों में कर्मकाण्ड की जटिलता नहीं है।

(८) इन लोगों में दहेज-प्रथा भी नहीं है।

(९) विशेष परिस्थितियों में विवाह-विच्छेद का प्रावधान है।

(१०) धार्मिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को स्वतंत्रता हासिल है वे चर्च में जा सकती है, प्रार्थनाओं में सम्मिलित हो सकती हैं, पादरी के पद पर भी कार्य कर सकती हैं।

(११) ईसाई धर्म, समाज तथा परिवार ने स्त्रियों पर किन्हीं प्रकार की निर्योग्यताओं को नहीं लादा हैं।[१७]

ईसाई-समाज में विवाह पद्धति :-

ईसाइयों की विवाह-पद्धति हिन्दुओं की तरह अधिक जटिल नहीं होती। हालाँकि यहाँ भी विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में ही प्रायः ग्रहण किया जाता है। इनमें भी हिन्दुओं की तरह ही विवाह को जिन्दगीभर का एक पवित्र बंधन माना जाता है। विवाह-विच्छेद को उपयुक्त नहीं समझा जाता है। विवाह-विच्छेद के संबंध में ईसा मसीह ने कहा है: "Therefore they are no mere twain, but one flesh what therefore God hath joined together, let not man put as under."[१८]

अर्थात् वे दोनों एक जिस्म होंगे, बस वे दो नहीं बल्कि एक जिस्म है। इसलिए जिसे खुदा ने जोड़ा है उसे आदमी जुदा न करें। इसी संबंध में आगे कहा गया है कि जो व्यक्ति अपनी पत्नी को व्यभिचारिणी होने के अतिरिक्त अन्य किसी कारण छोड़ेगा और दूसरी स्त्री से विवाह करेगा, वह व्यभिचार करता है, और वह जो छोडी हुई स्त्री से विवाह करता है, वह भी व्यभिचार करता है।[१९] इस प्रकार ईसाइयों में भी विवाह एक अटूट पवित्र बंधन है। यह विवाह एक पुरुष और एक स्त्री का ही पवित्र मिलन है। इन लोगों में एक से अधिक पति या पत्नियों का प्रचलन नहीं है। हमारे अति-प्राचीन काल में तो दोनों पद्धतियाँ उपलब्ध थीं, अर्थात् बहु-पत्नी विवाह

और बहु पतिविवाह। पांडवों का द्रौपदी से विवाह दूसरी पद्धति के अनुसार था। परंतु मध्यकाल में, और अभी नवजागरण के पूर्वतक, सवर्ण हिन्दुओं में "बहुपत्नीत्व" को पुरुष-पक्ष में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। मध्यकाल में पुरुषों की अनेक पत्नियाँ, उपपत्नियाँ और रक्षिताएँ (kept) होती थी। बिहारी का निम्नलिखन दोहा उसका साक्ष्य है -

"बालम बारी सौत के, सुन परनारी विहार।
भोरस अनरस रिस रलि, रीझ खीझ इक बार।।"[२०]

परंतु ईसाई धर्म और समाज बहुपत्नीत्व तथा पुरुष या स्त्री के विवाहेतर संबंधों को मान्यता नहीं देता, बल्कि उसे धिक्कारता है। इस संदर्भ में वे हमारे आदिवासी समाज से बहुत निकट हैं। आदिवासियों में विवाह पूर्व के यौन-संबंधों को ज्यादा गंभीरता से नहीं लिया जाता, परंतु विवाहोपरान्त के ऐसे संबंधों को बक्शा भी नहीं जाता। इस मामले में वे बहुत ज्यादा "टची" होते हैं।

ईसाई परिवारमें विवाह के लिए जब जीवन-साथी का चुनाव अंतिम रूप से कर लिया जाता है और वधू-पक्ष, वर-पक्ष द्वारा रखे गए विवाह प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है, तो सगाई या मंगनी का संस्कार संपन्न होता है। यहाँ भी वह हमारे सवर्ण समाज से अलग और आदिवासी समाज के निकट पड़ता है। विवाह का प्रस्ताव वर-पक्ष से आता है, सवर्ण हिन्दू समाज में यह प्रस्ताव वधू-पक्ष की ओर से आता है। किसी निश्चित दिन पर वर-पक्ष और वधू-पक्ष वाले अपने परिजनों एवं मित्रों सहित चर्च में पहुँच जाते हैं। वर-पक्ष वाले अपने साथ मिठाई, नारियल, वस्त्र, अंगूठी तथा रूपये आदि ले जाते हैं। इस अवसर पर होने वाले वस्वई को पास-पास बिठाया जाता है और पादरी बाइबिल से कुछ अंशों को पढ़ता है। यहाँ औपचारिक रूप से वैवाहिक संबंधों की वस्वई द्वारा स्वीकृति प्राप्त की जाती है। दोनों ही एक-दूसरे को अंगूठियाँ पहनाते हैं। यह रिवाज अब हिन्दुओं में भी शुरू हो गया है, फर्क इतना है कि ईसाइयों में पर विधि चर्च में होती है और हिन्दुओं

में यह विधि सामाजिक होती है और मंत्रोच्चार आदि नहीं होता और इसे वर या वधू किसी के भी यहाँ संपन्न किया जाता है। अंगुठियाँ पहनाने के बाद मंगनी की विधिवत घोषणा कर दी जाती है। उसके बाद मिठाई-वितरण तथा जलपान आदि होता है।

सगाई के उपरांत विवाह संस्कार के लिए लड़के और लड़की अथवा दोनों में से किसी एक को चर्च के अधिकारी को विवाह-हेतु प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है, जिसमें दोनों परिवारों का संक्षिप्त परिचय होता है। इस प्रार्थना-पत्र के प्राप्त होने पर चर्च का अधिकारी इस आशय की सूचना प्रकाशित करता है ताकि इस विवाह से यदि किसी को आपत्ति हो तो उसे प्रस्तुत की जा सकती है। इस सूचना के प्रकाशित होने के ९६ घण्टों के पश्चात् विवाह संपन्न किया जा सकता है। इस विवाह के संबंध में किसी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं आने पर विवाह की तारीख निश्चित कर दी जाती है। विवाह-हेतु प्रार्थना पत्र देने के तीन महीने के अंदर विवाह संपन्न करना पड़ता है, अन्यथा पुनः चर्च के अधिकारी को प्रार्थना-पत्र देना होगा। विवाह-कार्य साधरणतया उस चर्च में संपन्न होता है, लड़की जिस चर्च की सदस्या होती है। यदि लड़के-लड़की में से एक प्रोटेस्टण्ट और एक कैथालिक चर्च का सदस्य हो तो ऐसी स्थिति में विवाह कैथालिक चर्च में ही संपन्न होता है।

विवाह के लिए जो तारीख और समय निश्चित होता है, उस दिन दोनों पक्ष वाले गिरजाघर में पहुँचते है। वर-पक्ष वाले दायीं ओर वधू-पक्ष वाले बायीं ओर बैठ जाते है। हिन्दुओं में भी वधू को वामा ही कहा गया है। वधू के चर्च में पहुँचने पर उसके स्वागत में चर्च का घण्टा बजाया जाता है और तब सब उपस्थित लोग खड़े होकर नववधू का स्वागत करते है और गीत गाते हैं। तत्पश्चात् पादरी लड़के-लड़की को यह घोषित करने को कहते हैं कि उनके विवाह में किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं है। फिर दोनों के द्वारा यह प्रतिज्ञा की जाती है कि वे आजीवन एक-दूसरे के साथ पवित्र बंधन में बंधे रहेंगे और सुख दुःख में परस्पर का साथ देंगे। उसके बाद

पादरी पहले लड़के से पूछता है कि क्या तुम्हें यह लड़की पत्नी के रूप में स्वीकार है ? लड़के की स्वीकृति मिलने पर, पादरी फिर उसे कहता है कि क्या तुम पवित्र वैवाहिक जीवन बिताने का, प्रत्येक परिस्थिति में पत्नी का साथ देने का, उसके प्रति वफादारी निभाने का, मृत्युपर्यन्त उसका साथ नहीं छोड़ने का वादा करते हो ? इस संबंध में जब वर की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है, तब पादरी लड़की से भी ये ही सब प्रश्न करते हैं और उसकी भी स्वीकृति प्राप्त करते हैं। फिर वर-वधू अनपी अंगूठियाँ बदल लेते हैं। इसके पश्चात पादरी घोषित करते हैं कि ये दोनों अब पति-पत्नी हो गये है। वह तीन बार ''आमीन'' कहता है और उसके साथ ही विवाह संपन्न मान लिया जाता है। इस प्रसंग पर पादरी वर-वधू को आशीर्वाद भी देते है। इस तरह देखें तो ईसाइयों की विवाह-विधि में ज्यादा जटिलता नहीं होती है।

कुछ ईसाई परिवारों में लोग चर्च में जाकर इस प्रकार का धार्मिक-विवाह न करके ''सिविल मैरिज'' करते हैं। सिविल मैरिज अदालत में संपन्न किया जाता है। इसे हम अदालत में किया गया एक मामूली समझौता मात्र कह सकते हैं। इसके लिए विवाह की इच्छा रखनेवाले लड़की-लड़के को मैरज रजिस्ट्रार को प्रार्थना-पत्र देना होता है और कानूनी कार्यवाही करनी पड़ती है। सन् १८७२ के ''भारतीय ईसाई विवाह'' अधिनियम के तहत विवाह हेतु लड़का-लड़की की न्यूनतम आयु क्रमशः १६ और १३ वर्ष होनी चाहिए। इससे कम आयु होने पर उनके अभिभावकों की स्वीकृति हासिल करनी पड़ती है। अब यह आयु मर्यादा क्रमशः २१ और १८ वर्ष की कर दी गई है। और जो हिन्दू ''सिविल मैरिज'' करते है, उन पर भी यह लागू होता है। ईसाई परिवारों में ''सिविल मैरिज करने वाले वर-वधू कई बार अदालत में विवाह हो जाने के उपरांत चर्च में भी पादरी का आशीर्वाद लेने के लिए जाते हैं, परंतु यह फरजियात नहीं है। ''सिविल मैरिज'' की व्यवस्था होने के बावजूद ईसाइयों में अधिकांश विवाह चर्च में ही संपन्न होते हैं।''[२१]

ईसाइयों में विवाह-विच्छेद (Divorce Among Chiristians) :-

यह पहले कहा जा चुका है कि ईसाई धर्म विवाह-विच्छेद की अनुमति नहीं देता। उनके किसी भी चर्च में विवाह-विच्छेद की घोषणा नहीं की जाती है। रोमन कैथालिक संप्रदाय तो विवाह-विच्छेद के पूर्णतः विरुद्ध है, जबकि प्रोटेस्टेण्ट संप्रदाय कुछ विशेष परिस्थितियों में समर्थन करता है। किसी भी चर्च में न विवाह-विच्छेद किया जाता है और न ही विवाह-विच्छेद करने वाले वहाँ पुनः विवाह कर सकते हैं। पहले जीवन-साथी की मृत्यु के एक वर्ष के बाद ही चर्च उसे पुनर्विवाह की आज्ञा देता है। यदि कोई पक्ष निषेधात्मक संबंधों के अन्तर्गत आता हो, पागल हो गया हो या दूसरे पक्ष के साथ क्रूरता का व्यवहार करता हो, तो ऐसी स्थिति में चर्च उन्हें विवाह-विच्छेद की आज्ञा देता है। ईसाइयों में संतान की उत्पत्ति के बजाय पारस्परिक प्रेम को अधिक महत्व दिया जाता है। इनमें बांझपन को भी वैवाहिक पृथक्करण का आधार माना गया है।

अतः जैसाकि ईसा मसीह ने कहा है ईसाई धर्म भी विवाह-विच्छेद की अनुमति नहीं देता है, परंतु व्यवहारतः देखा जाए तो अन्य धर्म के अनुयायियों की तुलना में उनमें विवाह-विच्छेद अधिक पाए जाते हैं। यहाँ भी वे हमारे पिछड़े समाज के अधिक निकट हैं। स्वतंत्रता व समानता के ख्यालों के कारण जहाँ व्यवहार रूप में पारस्परिक प्रेम में जरा भी बाधा के आने पर वे लोग विवाह-विच्छेद को अनुचित नहीं मानते। वस्तुतः चर्च उसकी अनुमति नहीं देता, किन्तु ईसाई विवाह-विच्छेद कानून उसमें अधिक उदार है और फलतः तलाक लेने में वहाँ हिन्दू-ला जितनी परेशानियाँ नहीं होती है। विख्यात फिल्म अभिनेत्री एलिजाबेथ टेलर (लीज़) ने कई-कई विवाह किए थे। इसका एक संदर्भ मेरे मार्गदर्शक प्रो. डॉ. पारूकान्त देसाई की कविता में भी आता है। यथा-

"हे लीज़ !/ प्लीज़, बन्द मत कर देना अपना वह सिलसिला/ अन्यथा पत्रकारों को मसाला कहाँ से मिलेगा ?/ पर सुनो एक प्रार्थना है हमारी/

जीवन पर्यन्त नये बछड़ों से ब्याहती जाओ/ और बदला लो उन बूढ़े दशरथों से/ जिन्होंने न जाने कितनी नव-यौवना कैकेयियों कों तरसाया है सावन में।''[२२]

परंतु जैसा कि पहले बताया जा चुका है भारतीय ईसाई आज भी अपने हिन्दू संस्कारों से युक्त है, अतः भारतीय ईसाइयों में विवाह-विच्छेद की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम ही पायी जाती।[२३]

ईसाई विवाह में आधुनिक परिवर्तन (Modern changes in cristian marriage):-

ईसाई धर्म अपनी बुनियादी बातों में ज्यादा समझौतापरस्त नहीं है, परंतु जहाँ तक सामाजिक नीति-नियम और कायदों की बात है उसमें अधिक लचीलापन है। फलतः वर्तमान समय में औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य शिक्षा एवं विचार, भौतिकवादी दृष्टिकोण, वैयक्तिकता का आदर्श, स्वतंत्रता और समानता के विचार, तार्किकता और संगतिपूर्ण चिंतन, रोमान्स आदि के कारण ईसाई धर्म में विवाह से सम्बद्ध आदर्शों तथा नियमों में भी निरंतर परिवर्तन आ रहे हैं। ईसाई समाज में स्त्रियाँ परिवार की आर्थिक उन्नति हेतु अपेक्षाकृत अधिक क्षेत्रों में काम करती है, जो क्षेत्र अमूमन स्त्रियों के लिए वर्जित माने गए हैं उनमें भी वे अब काम करने लगी हैं। हमारे यहाँ अभी कुछ वर्ष पहले तक महिलाओं की नौकरी अर्थात् अध्यापिका की नौकरी ऐसा ही माना जाता था। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास ''रागदरबारी'' में इसका एक व्यंग्यात्मक संदर्भ आया है- ''लड़की यदि पढ़ी-लिखी है, तो अच्छी बात है; और नहीं पढ़ी-लखी है तो और भी अच्छी बात है, क्योंकि हमें उसे मास्टरनी तो बनाना नहीं है। सुन्दर है तो अच्छी बात है और नहीं सुन्दर हैं तो और भी अच्छी बात है, क्योंकि हमें उसे कोठे पर तो बिठाना नहीं हैं।''[२४]

अभिप्राय यह कि आज भी बहुत कम क्षेत्रों में स्त्रियाँ नौकरी करती

हुई पायी जाती हैं। इसमें किरण बेदी या मुंबई क्राईम ब्रान्च की पुलिस अधिक्षक जैसे कुछ अपवाद हमें मिल सकते हैं, पर सामान्य स्थिति तो लगभग उपरवित् ही है। अमरीका तथा अन्य पाश्चात्य देशों में स्त्रियाँ अब सेना में भी भर्ती होती हैं। बहरहाल हम कहना यह चाह रहे थे कि ईसाई समाज में स्त्री अधिक स्वतंत्र और मुक्त है। फलतः विवाह की परंपरागत मान्यताओं एवं रूप में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं। पाश्चात्य समाजों के अनुकरण की प्रवृत्ति भारतीय ईसाइयों में अन्य धर्मावलम्बियों की तुलना में अधिक पायी जाती है। इस पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भी अपेक्षाकृत अधिक मालूम पड़ता है। ऐसी स्थिति में इनके परंपरागत वैवाहिक आदर्शों में भी बदलाव आ रहे हैं। भारतीय ईसाई विवाह-संस्था में वर्तमान समय में निम्नलखित परिवर्तन आ रहे हैं -

(१) विवाह का धार्मिक पक्ष कमजोर पड़ता जा रहा है। चर्च में जाकर धार्मिक विधि से विवाह करने की अपेक्षा अब "सिविल मैरिज" का प्रचलन दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। विवाह के उपरोक्त औपचारिकता के नाते वर-वधू आशीर्वाद के लिए चर्च में जाते हैं। इस प्रकार दिनोदिन विवाह का धार्मिक आधार शिथिल पड़ता जा रहा है।

(२) ईसाई-विवाह में रोमान्स का तत्त्व अब दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। ईसाई समाज में अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छंद वातावरण होता है, फलतः स्त्री-पुरुषों को अधिक निकट आने के अवसर मिलते है, इसी सबब उनमें रोमान्स अधिक पनपता है। इसके फलस्वरूप ईसाइयों में रोमान्स के आधार पर पाया गया है कि इन लोगों में ४२% विवाह मित्रतापूर्ण संबंधों के आधारपर, २८% सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित होने से होने वाले परिचय के आधार पर और केवल २०% विवाह अभिभावकों की सहायता से होते है।[२५]

(३) ईसाई समाज में रक्त-संबंधियों (Blood-relation) के बीच विवाह-संबंध वर्जित है, परंतु अब धीरे-धीरे निकट के रक्त-संबंधों को छोड़कर, शेष सबमें ऐसे संबंध होने लगे हैं। ममेरे-फुफेरे भाई-बहनों के बीच भी

यदा-कदा सिविल मैरिज हो जाती है । इससे इतना तो प्रमाणित हो रहा है कि ईसाइयों के वैवाहिक निषेधों में क्रमशः शिथिलता के दर्शन हो रहे हैं ।

(४) ईसाइयों में यद्यपि धार्मिक दृष्टि से विवाह-विच्छेद मान्य नहीं है, तथापि आजकल उनमें विवाह-विच्छेद की प्रवृत्ति बहुत ही बढ़ रही है । इसका एक कारण स्त्रियों की आर्थिक दृष्टया आत्मनिर्भरता भी है । शिक्षित होने के कारण उनमें एक स्वतंत्र-चेतना पायी जाती है और अतएव अपनी अस्मिता एवं अधिकारों के प्रति एक प्रकार की सभानता उनमें पायी जाती हैं । वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए पारस्परिक विश्वास, निष्ठा, प्रेम-त्याग-सहानुभूति, प्रत्येक स्थिति में परस्पर का साथ देने की एक बलवती इच्छा, समझौतापरस्त मनोवृत्ति तथा एक-दूसरे की कमियों को बरदाश्त कर लेने की प्रवृत्ति आदि का होना बहुत ही लाजमी होता है । इनके अभाव में मानसिक तनाव में वृद्धि होती है । पहले स्त्री शिक्षित और नौकरीशुदा नहीं होती थी, अतः सबकुछ बरदाश्त कर लेती थी, परन्तु अब परिवर्तित स्थितियों में नारी की वह सर्वसहा वाली छबि धूमिल हो रही है । आज अनेक ईसाई परिवारों में पति-पत्नी में सामंजस्य के अभाव में विवाह-विच्छेद का प्रतिशत बढ़ रहा है । और यह बढ़ते हुए विवाह-विच्छेद पारिवारिक-जीवन की स्थिरता को भी भंग कर रहे हैं ।

(५) धार्मिक और नैतिक दृष्टया ईसाइयों में विधवा-विवाह को उचित नहीं माना जाता है, परंतु जो विधवा अपनी यौन-इच्छाओं को नियंत्रित नहीं कर पाती है, उसे पति की मृत्यु के एक साल के बाद विवाह करने की आज्ञा दी गई है । वर्तमान समय में कोई भी विधवा पति की मृत्यु के कुछ दिन पश्चात ही पुनर्विवाह करने लगी है । बल्कि ईसाइयों में आजकल विधवा-विवाहों को प्रोत्साहित किया जाता है । यह नवजागरण का परिणाम है । अभी कुछ वर्ष पूर्व तक हिन्दूओं में अगड़ी जातियों में विधवा-विवाह को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, परंतु अब विधवा होने वाली लड़की यदि युवा हो तो उनके पुनर्विवाह में कोई अनौचित्य नहीं माना जाता था । बल्कि इसके कारण

यौन-भ्रष्टाचार में कमी पाई गई है। समाज के बड़े-बूढ़े तथा ठेकेदार विधवा-विवाह का क्यों विरोध करते उसके लिए हिन्दी के उपन्यासकार नागार्जुन कृत ''रतिनाथ की चाची'' तथा ''उग्रतारा'' जैसे उपन्यास पढ़ने चाहिए।

उपर्युक्त परिवर्तनों के कारण, धीरे-धीरे ईसाइयों में विवाह एक साधारण-सा समझौता मात्र बनता जा रहा है, जिसे कभी भी समाप्त किया जा सकता है तथा कभी भी स्त्री-पुरुष के पुनर्विवाह संपन्न कराए जा सकते है। इसके फलस्वरूप उत्पन्न पारिवारिक अस्थिरता एक गंभीर समस्या का रूप धारण कर रही है। इस पारिवारिक अस्थिरता का भोग छोटे बच्चे हो रहे हैं। दूसरों के गुनाहों की सज़ा भुगतने के लिए वे लाचार हैं।

ईसाई समाज की एक अच्छी बात यह है कि उनमें बाल-विवाह नहीं होते। इस संदर्भ में डॉ. जान राधाकृष्णन ने लिखा है कि जब तक युवक स्थायी रूप से काम पर नहीं लग जाता, वह अपना और अन्य लोगों का निर्वाह नहीं कर सकता, तब तक उसे विवाह नहीं करना चाहिए। हिन्दुओं के भी सवर्ण समाज में यह प्रवृत्ति अब बढ़ रही है। प्राणी केवल स्नेह पर निर्भर नहीं रह सकता। पेढू के अलावा उसे पेट भी है। अतः ईसाई सोचते हैं कि जीवन-साथी ऐसा होना चाहिए जो एक आदर्श मसीही घराना बना सके, जो अपने जीवन-साथी को न केवल दैहिक सुख और आनंद दे अपितु जीवन के सभी स्तरों पर उसको साथ-सहयोग दे।

मुस्लिम-संदर्भ :-

विश्व-जनसंख्या के आधार पर, सन् २००१ की गणना के मुताबिक मुस्लिमों की कुल संख्या १,१८,८२,४२,००० की है और कुल २०८ देशों में वे बसे हुए हैं। उसके सामने हिन्दुओं की संख्या ८१,१३,३७,००० की है और वे कुल ११४ देशों में पाये जाते हैं, किन्तु उनकी अधिकांश आबादी तो भारत और नेपाल में है और दूसरे देशों में वे केवल छिटपुट रूप में पाये जाते हैं, जो पिछले १००-१५० वर्षों में उन देशों में गए हैं।[२६] भारत की

दृष्टि से देखें तो सन् २००१ की गणना के अनुसार उसकी कुल आबादी १,०२,७०,१५,२४७ की है, उसमें मुस्लिमों की कुल संख्या ११% है, अर्थात् ११,२९,७१,६७७ लोगों की है। इस प्रकार संख्या की दृष्टि से भारत में वे द्वितीय स्थान पर आते है।[२७]

विश्व में इस्लाम का उदय :-

पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि हिन्दू-धर्म, जरथुस्त्र-धर्म और यहूदी-धर्म संसार के तीन प्राचीन धर्मों में से है, और ईसाई-धर्म और इस्लाम-धर्म ये दोनों यहूदी-धर्म से निःसृत हुए है। यहूदी लोग सामी जाति के थे और ईसाई और मुस्लिम दोनों धर्मों के प्रवर्तक क्रमशः ईसा मसीह और मुहम्मद भी सामी जाति के सदस्य थे। सामी जाति घोर रूप से मूर्तिपूजक थी। इस मूर्तिपूजा को त्यागने का उपदेश सर्वप्रथम हजरत इब्राहीम ने दिया जो यहूदियों के आदि पैगम्बर माने जाते है। इन्हीं हजरत इब्राहीम के खानदान में ईसा और मुहम्मद दोनो हुए है। हजरत दाऊद (David , ईसा और मूसा (Moses) और मूसा ये तीनों पैगम्बर हजरत इब्राहीम के बड़े बेटे हजरत इसहाक के खानदान में हुए है और हजरत मुहम्मद हजरत इब्राहीम के छोटे बेटे इस्माईल के खानदान में हुए है। चूँकि हजरत इब्राहीम मूर्तिपूजा के विरोधी थे और उन्होंने एकेश्वरवाद को चलाया था, मुस्लिम भी उनकी पैगम्बरी में विश्वास करते है।[२८]

मुस्लिम-धर्म के स्थापक हजरत मुहम्मद पैगम्बर का जन्म सन् ५७० में हुआ था। उनका जन्म एक सौदागर परिवार में हुआ था। इस्लाम का उनको इल्हाम हुआ उसके पहले अरब-समाज की स्थिति बड़ी ही विचित्र थी। वहाँ निर्धन भोगवादियों का जमावड़ा था। अरब गरीब किस्म के लोग थे और उसके कारण उनके लोभ का स्वरूप भी कुछ बढ़ा-चढ़ा था। सूदखोरी साधारण-सी बात थी और गरीब लोगों को सूद के नाम पर खूब लूटा जाता था। धन बटोरने के हर उपाय को अच्छा समझा जाता था। मतलब कि

उसमें साधन-शुद्धि पर कोई विचार नहीं करता था। जुआ, शराबखोरी और वेश्यागमन भयंकर रूप से प्रचलित थे और विधवा, अनाथ और कमजोर आदमी फालतू समझे जाते थे और उनका खूब शोषण होता था। समाज में शादी का कोई खास महत्त्व नहीं था, न यौन-संबंधों के बारे में कोई निश्चित व्यवस्था थी। इन सब में स्त्रियों की स्थिति बहुत ही विचित्र थी। समाज में इनका न कोई आदर था, न अधिकार। एक पतनशील समाज के सारे लक्षण वहाँ मौजूद थे। अरब लोग बद्दू कहलाते थे और सारा-का-सारा बद्दू समाज घनघोर, रूप से मूर्तिपूजक था। मक्का में असंख्य मूर्तियाँ थीं और वे सब पूजनीय थीं। सबसे बड़ी प्रतिष्ठा एक काले पत्थर की थी, जिसे काबा कहा जाता था। इस प्रकार यदि हम देखें तो सारा अरब समाज अंध विश्वास, कुरीतियाँ और दुराचारों का अड्डा बना हुआ था। ऐसी विषम परिस्थिति में मुहम्मद साहब को इस्लाम का इल्हाम हुआ और इन्होंने इस नये धर्म की स्थापना की।[१९] अतः हम देख सकते है कि इस्लाम में उन तमाम नीति नियमों पर जोर दिया गया है जिनका अभाव तत्कालीन अरब समाज में था।

मुहम्मद साहब ने दर्शन के ऊहापोह में न जाकर एक सीधे-सादे कर्ममय धर्म का आख्यान किया। "ला इलाह इल्ललल्लाह मूहम्मदुर्ररसूलल्लाह" इस्लाम का मूल मंत्र है। इसका अर्थ होता है, "अल्लाह के सिवा और कोई पूजनीय नहीं है तथा मुहम्मद उनके रसूल है।" केवल अल्लाह को मानने से कोई आदमी पक्का मुसलमान नहीं हो सकता। उसे यह भी मानना पड़ता है कि मुहम्मद अल्लाह के नबी, रसूल और पैगम्बर है। इसके बाद कुरान हर मुसलमान के लिए पांच धार्मिक कृत्य निर्धारित करता है। वे धार्मिक कृत्य इस प्रकार है -

(१) कलमा पढ़ना :-

अर्थात् इस मंत्र का पारायण करना कि ईश्वर एक है और मुहम्मद उसके रसूल है- ला इलाह इल्ललल्लाह मुहम्मदुर्रसूलल्लाह। इस्लाम का

एकेश्वरबाद ''तौहीद'' इसी एक मंत्र पर आधारित है। अतः इसके पारायण की इस्लाम में बहुत महिमा है।

(२) नमाज़ पढ़ना :-

अर्थात् प्रतिदिन पाँच बार भगवान से प्रार्थना करना। इसको सलात भी कहते है।

(३) रोज़ा रखना :-

अर्थात् रमजान के महीने में केवल एक शाम खाना और वह भी सूर्यास्त के बाद। रमज़ान महीना इसलिए चुना गया कि इसी महीने में पहले-पहल कुरान उतरा था। इसीलिए इस्लाम में इस महीने का विशेष महत्त्व है।

(४) ज़कात :-

अपनी वार्षिक आय का चालीसवां हिस्सा अर्थात् २.५ प्रतिशत दान में दे देना।

(५) हज :-

अर्थात् तीर्थों में जाना। पहले तीर्थ मक्का और मदीना में थे। अब सन्तों की समाधियों को भी मुसलमान तीर्थ का दर्जा देते है।[३०]

इस्लाम का क्षिप्र प्रसार :-

मुहम्मद साहब का जन्म सन् ५७० ई. में हुआ था। सन् ६२२ ई. में उन्होंने मक्का छोड़कर मदीने की हिजरत की थी। उसी वर्ष से इस्लाम का वास्तविक आरंभ माना जाता है। परंतु बहुत कम समय में ही यह धर्म विश्व में चारो तरफ फैल गया।[३१] केवल ७०० ई. लगते-लगते इस्लाम इराक, ईरान और मध्य एशिया में फैल गया तथा सन् ७१२ ई. में भारत का सिन्ध

प्रदेश मुसलमानों की अधीनता में चला गया। उसी वर्ष मुसलमानी राज्य स्पेन में भी स्थापित हो गया। जो अरब सेनापति समुद्र पार करके स्पेन पहुँचा था, उसका नाम तारिक था। वह जिस चट्टान पर सबसे पहले उतरा था, उसे अब जिबाल्टर कहते हैं। "जिब्राल्टर" जबलुत्तारिक। तारिक की चट्टान। से व्युतपन्न हुआ है। हिजरी सन् के सौ साल पूरे होते-होते, अर्थात् सन् ७२२ तक में मुस्लिम राज्य के समान कोई दूसरा शक्तिशाली सामराज्य दुनिया में नहीं रह गया। इतिहास में रोमन राज्य की गरिमा बहुत अधिक आंकी जाती थी, किन्तु उसके निर्माण में छः सौ साल लग गये थे, जबकि अरबों ने यह काम केवल सौ वर्षों में किया था। अरब खलिफाओं ने जितना बड़ा साम्राज्य स्थापित किया, सिकन्दर का साम्राज्य उसका एक अंश मात्र था। ईरानी साम्राज्य ने रोमन साम्राज्य के बगल में लगभग एक हजार वर्षों तक अपनी सत्ता कायम रखी, किन्तु अरब धर्म-योद्धाओं के सामने वह भी लड़खड़ा गया। मुहम्मद साहब की मृत्यु के दस साल बाद ही अर्थात् सन् ६४२ तक में ईरान पर अरबों का कब्जा हो गया। वहाँ के लोगों ने इस्लाम को कबूल कर लिया। भारत में जो "पारसी धर्म" के लोग है, वे उसी समय अपने धर्म की रक्षा के लिए ईरान छोड़कर भारत समुद्री मार्ग से भाग आए थे।[३२]

इस्लाम का इतना क्षिप्र प्रसार हुआ उसके पीछे इतिहासकारों का मानना है कि इस्लाम का प्रचार-प्रसार तलवार के बल पर हुआ। जहाँ-जहाँ ये लोग गये, वहाँ की जनता के सामने उन्होंने तीन विकल्प रखेः या तो कुरान लो और इस्लाम कबूल करों, या कर दो और अधीनता स्वीकार करो, अथवा मरने के लिए तैयार रहो। किन्तु तलवार के कारण ही इस्लाम का इतना प्रचार-प्रसार हुआ यह अर्ध-सत्य है। इस संदर्भ में डॉ. रामधारीसिंह दिनकर लिखते है "एक तलवार के कारण ही इस्लाम का सारा प्रसार सम्भव नहीं हुआ। असल में कवियों, नेताओं और सन्त-सुधारकों के समान, नया धर्म भी तब प्रकट होता है जब उसकी आवश्यकता होती है और वह उसी

समाज में प्रकट होता है जिस समाज के लोग उसके इन्तजार में होते है। इस्लाम भी अरबी देशों की ऐतिहासिक आवश्यकता के कारण जनमा था और इसीलिए वह शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया।"[३३]

स्वामी विवेकानंद लिखते है- "The Mohammedan Conqnest of India came as salvation to the down-trodden to the poor. That is why one fifth of our people have become Mohammedans It was not the Sword that did it all"

इस्लाम के ईरान- प्रदेश के सन्दर्भ में डॉ. दिनकर लिखते है "इस्लाम का उदय अरब में हुआ। वह ईरानवालों का धर्म नहीं था, किन्तु सभ्यता और संस्कृति में ईरानवालों के सामने अरबी योद्धा बर्बर और अर्ध-सभ्य थे। अतएव, शरीर से तो अरबों ने ईरानवालों को जीत लिया और उन्हें मुस्लमान भी बना डाला, किन्तु ईरान की ऊँची संस्कृति के सामने ही विजेता पराजित हो गये और बहुत शीघ्र ही यह अवस्था आ गयी कि फारसी भाषा इस्लाम की भाषा और ईरानी संस्कृति मुस्लमानों की अपनी संस्कृति हो गयी। यह भी ध्यान देने की बात है कि अरब जाति सामी Semitic थी और ईरानवाले आये थे। अतएव इस्लाम का जन्म सामी संस्कृति के बीच हुआ था, किन्तु ईरान आकर वह आर्य-नस्लवालों का धर्म हो गया।"[३४]

मुहम्मद साहब द्वारा प्रचारित धर्म अत्यन्त सरल, सुबोध और सुलभ धर्म था। प्रारंभ से ही उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इस्लाम कबूल कर लेने के बाद आदमी-आदमी के बीच कोई भेद नहीं रह जाता। इस बराबरी और बिरादरी की भावना के कारण इस्लाम की लोकप्रियता उन वर्गों और समूहों में बढ़ गयी जो उच्चवर्गीय और उच्चवर्गीय लोगों के धार्मिक और सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित थे और जिन पर धर्म और शास्त्रों के नाम पर अनेक निर्योग्यताएँ थोपी गयीं थीं।

एक और कारण भी है। धर्म की विजय उनके नेताओं के चरित्र के कारण भी होती है। इस्लाम का प्रसार जिस त्वरा से हुआ उसका एक कारण

यह है कि मुहम्मद साहब और उनके बाद के कुछ उत्तराधिकारी खलीफा उच्च-चरित्र और साधक कोटि के व्यक्ति थे । "इस्लाम त्याग और वैराग्य का अभिमान नहीं करता है । किन्तु उसके आरंभिक साधक, खास करके पहले के चार खलीफा -

(१) अबूबक्र - ६३२-३४ ई.

(२) उमर ६३४-४३ ई.

(३) उस्मान ६४३-५५ ई. और

(४) अली ६५५-६१ ई

इतने धर्मनिष्ठ निकले कि लोग उनके जीवन में मूर्तिमान नवीन धर्म का तेज देखकर कृतकृत्य हो गये ।"[३५]

ये खलीफा राजा भी थे और धर्म गुरु भी । ऊपर निर्दिष्ट किया जा चूका है कि इस्लाम के प्रचारक शुरू के चार खलीफाओं ने सादगी, सच्चरित्रता, प्रामाणिकता, वीरता और वैराग्य की वह मिसाल लोगों के आगे रखी कि उनका जीवन ही धर्म का आईना हो गया । इस्लाम का आचार-पक्ष बहुत ऊँचा हो गया । प्रायः देखा जाता है कि विचार बड़े ऊँचे और उमदा होते है, पर आचार में घटियापन होता है । किसी ने ठीक ही कहा है : "As far as tje Texts cpmcermed we are so high- but practically- we all speak lie."

अपने खलीफाओं के आचारमूलक चरित्र से प्रभावित होकर लोग इस नये धर्म का अंगीकार करने लगे जिसमें व्यक्ति गृहस्थ रहकर भी वैराग्य निभा सकता है, जो गद्दी पाकर भी तबीयत से फकीर रह सकता है । तलवार उठाकर भी दया से महरूम नहीं रह सकता है । डॉ. दिनकर इस संदर्भ में लिखते है "हजरत उमर ने, जिनके सिपाइयों ने ईरानी साम्राज्य पर विजय प्राप्त की थी, जब स्वयं जेरुसलेम में विजेता की हैसियत से प्रवेश किया, तब वे जिस ऊँट पर सवार थे, उसी पर उसके सारे सामान भी लदे थे और ये सामान थे कम्बल का एक खेमा, एक बोरा अनाज, एक बोरा खजूर और

लकड़ी के कुछ बर्तन। यह भी सादगी उस विजेता की जिसके इशारे पर राजमहल के सारे सुख, एक क्षण में, मुहैया किए जा सकते थे।''[३६] गरीबी की सादगी, सादगी नहीं कंगालियत है; अमीरी की सादगी सादगी की बाहशाहत है। और यह बादशाहत इन खलीफाओं में थी। उनमें न्याय और विवेक था। बचपन में कहीं पढ़ा हुआ स्मृतिपटल पर आ रहा है कि हजरत उमर एक बार कहीं जा रहे थे तो अपने गुलाम से वह कहते हैं कि वे लोग बारी-बारी से ऊँट पर सवारी करेंगे। जो व्यक्ति अपने गुलाम का भी इतना ख्याल रखता हो उस पर कोई भी शक्स आंख मूंदकर भरोसा कर सकता है।

ईरान, मेसीपोटेमिया, सीरिया, फिलिस्तान और मिस्र पर विजय पाने वाले बहादुर मुस्लिम नेताओं की सादगी का वर्णन करते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार गिब्ब ने लिखा है - ''जहाँ भी वे अपना पड़ाव डालते थे, सेना के सभी लोग एक ही पांत में बैठकर प्रार्थना करते, एक ही दस्तरखान पर भोजन करते और एक साथ ही खलीफा के मुंह से उत्साहप्रद उपदेश सुनते थे। चढ़ाई हो या तीर्थ-यात्रा, ये खलीफा सर्वत्र न्याय फैलाते चलते थे। उन्होंने अरबों में प्रचलित बहुविवाह की व्यभिचारपूर्ण प्रथा में सुधार किया; खिलाफत की ओर जो लोग कर उगाहने को नियुक्त थे, उन्हें निर्दय और जुल्मी होने से रोका और कर्मचारियों को विलासी बनने से मना किया। खालिद को पैगम्बर ने ईश्वर की तलवार की उपाधि दी थी और उन्हीं की वीरता के चलते, मेसीपोटेमिया और सीरिया इस्लाम के झण्डे के नीचे आये थे। किन्तु जब वे मरने लगे, तब उनके पास केवल एक घोड़ा और एक गुलाम था। हजरत अबूबक्र ने अपनी सेना को आदेश दे रखा था कि न्यायी बनो, क्योंकि अन्याय से उन्नति नहीं हो सकती; बहादुर बनो, क्योंकि शत्रु के सामने सिर झुकाने की अपेक्षा मर जाना कहीं श्रेष्ठ हैं, दयालु बनो, क्योंकि बूढों, बच्चों और औरतों पर तलवार उठाना पाप है; फल देनेवाले वृक्षों को; फसलों और जानवरों को तबाह मत करो। अगर दुश्मन को भी तुमने कोई वचन दिया है, तो उसे निभाना तुम्हारा धर्म है, और जो लोग दुनिया की

झंझटों से दूर रहते है, उन पर जुल्म मत करो।''[३७]

अबूबक्र और हजरत उमर जैसे खलिफा उन अफसरों को कड़ी सजा देते थे जो विलासी जीवन बिताते थे और रेशम पहनते थे। उनका विश्वास था कि यदि मुसलमान भी ईरान और कुस्तुनतुनिया की विलासिता का अनुकरण करेंगे तो उनका पतन होगा। अतः वे अपनी धर्मसेना को आराम, सुख और भोग-विलास से कोशों दूर रखना चाहते थे, क्योंकि उनका दृढ़ मत था कि उन्नतिशील जातियाँ आराम-तबल नहीं होतीं। वे हमेशा संघर्ष का वरण करती है और इस संघर्ष शक्ति के छीलने पर जातियाँ विलासिता और अतएव पतनोन्मुखी होती है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अपने आरंभिक दौर में इस्लाम एक क्रान्तिकार धर्म था। वह अपने अनुयायियों को अन्धविश्वास से बचाता था और उन्हें दार्शनिक उलझनों से दूर रखता था। ईश्वर या अल्लाह को छोड़कर किसी के भी सामने मस्तक झुकाने में वह इन्सानियत का अपमान समझता था। सबसे बड़ी बात थी बिरादरी और समानता की भावना। एक बार जो व्यक्ति इस्लाम कबूल कर लेता था, धनवान से धनवान मुसलमान भी उसे अपना भाई या बिरादर मानता था और उसके साथ बराबरी का सुलूक करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उन दिनों मुसलमान जहाँ-जहाँ भी गये, वहाँ के समाज में, खास करके निम्न तबके में क्रान्ति मच गई और इन्सान अपने मस्तक को ऊपर उठाकर चलने लगा। इस सन्दर्भ में मानवेन्द्रनाथ राय ने लिखा है -

''अरबी आक्रमणकारी वीर जहाँ भी गये, जनता ने उनहें अपना रक्षक और त्राता मानकर उनका स्वागत किया, क्योंकि यह जनता कहीं तो रोमन शासकों के भ्रष्टाचार के नीचे पिस रही थी, कहीं ईरानी तानाशाही के जुल्मों से त्रस्त थी और कहीं ईसाइयत का अन्धविश्वास उन्हें जकड़े हुए था। ये आक्रमणकारी अरब अपने नबी के क्रान्तिकारी उपदेशों में कट्टरता से विश्वास करते थे, खलीफों के विवेकपूर्ण एवं व्यवहारिक आदेशों का पालन उनका निश्चित धर्म था और इन कारणों से पराजित जनता की सहानुभूति और

विश्वास उन्हें आसानी से प्राप्त हो जाता था।''[३८]

इस प्रकार हम देख सकते है कि मुहम्मद साहब की मृत्यु के सौ साल बीतते न बीतते तो अरब साम्राज्य उत्तरी अफ्रीका, स्पेन, दक्षिणी फ्रान्स, ईरान, मध्य ऐशिया, यहाँ तक कि मंगोलिया तक फैल गया। किन्तु क्रान्ति और पुण्य की यह आरंभिक लहर अधिक स्थायी न रह सकी और उन मुसलमानों में भी वे बुराइयाँ घुस गयी जिनको रोकने के लिए आरंभिक खलीफा सादगी और पवित्रता का जीवन बिताते थे। साम्राज्यों की स्थापना के साथ सुख और विलासिता आती है। साम्राज्य स्थापित हो जाने के बाद मुसलमानों में भी ये बुराइयां पनपने लगी और धर्म की सेना लोभ, लालच और पाप के पंक में धँसने लगी। यहाँ तक कि खलीफा के पद के लिए भी झगड़े शुरू हो गये और नमाज में झुके हुए नेताओं की गरदनें काटकर हत्यारे लोग नेता बनने लगे। खलीफा के पद के लिए ये जो झगड़े पैदा हुए उनसे ही मुसलमानों में शिया और सुन्नी का भेद शुरू हो गया।

अरब और इस्लाम का भारत से संपर्क :-

अरब से भारत का पुराना व्यापारिक संबंध था। आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब सिन्ध और बलख अरब-साम्राज्य में मिल गया तो भारतीय संस्कृति का प्रभाव उस पर पड़ने लगा। बगदाद के खलीफा हासर्रशीद के समय बगदाद का दरबार भारतीय विद्वानों से काफ़ी प्रभावित था। भारतीय विद्वानों को आमंत्रित किया जाता था। अरब विद्यार्थी पढ़ने के लिए भारत आते थे। संस्कृत के दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष, इतिहास, काव्य आदि के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद तब अरबी भाषा में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि भारत से गणित का ज्ञान अरब लोग ही यूरोप ले गये। पंचतंत्र आदि की कहानियाँ उन्हीं के द्वारा विदेशों में पहुँची।[३९] इस्लाम जब अपने सही रूप में उत्कर्ष पर था, तब ही भारत में आ चुका था। किन्तु भारत का वह दक्षिण प्रदेश था। सिन्ध पर मुहम्मदबिन कासिम की चढ़ाई तो सन् ७१२ ई. में हुई,

परंतु भारत के अरब सागर के तट पर अरब सौदागरों का आगमन तो बहुत पहले से था। मोपला लोगों ने तभी इस्लाम को कबूल कर लिया था। परंतु यह धर्म परिवर्तन स्वेच्छा से था, अनिच्छा से बलात नहीं। नौवीं सदी के खत्म होते-होते मालाबार का राजा चेरामन पेरुमल मुसलमान हो गया था। उन्होंने ही अरबों को इस्लाम के प्रचार की सुविधा दी थी। ऐसा कहा जाता है कि चेरामन पेरुमल मुसलमान होकर मक्का चला गया था। अभी कुछ समय पूर्व तक मालाबार के राजा "जमोरिन" का राज्याभिषेक, मुस्लिम-परिधान में ही होता रहा है। त्रावणकोर के राजा सिंहासन पर बैठते समय इस प्रतिज्ञा को दोहराते है कि वे इस तलवार को तब तक धारण करेंगे जब तक उनके चाचा मक्के से लौट नहीं आते। जमोरिन का यह भी एक आदेश होता था कि प्रत्येक धीवर (माछीमार) परिवार से एक व्यक्ति मुसलमान होगा। दसवीं शताब्दी तक वे पूर्वी तट पर भी पहुँचने लगे थे और तभी से सैकड़ों मस्जिदें इस प्रदेश में बनी हुई है। समाज में उनके पीर औलिया भी घूमते थे जिनको लोग आदर की दृष्टि से देखते थे। उत्तर के राजा लोग भी इस्लाम को उदारता से देखते थे। सिद्धराज जयसिंह की न्याय-प्रियता प्रसिद्ध है। उनके समय में "१०९४-११४३ ई." काम्बे के हिन्दुओं ने एक बार मुस्लिम सौदागरों पर हमला किया था, सिद्धराज ने इस मामले की जांच करवायी थी और दोषियों को दंडित करके उन्हें नयी मस्जिदें बनवाने हेतु रुपये भी दिये थे।

भारत पर मुस्लिम आक्रमण :-

मानवेन्द्रराय ने लिखा है कि संसार की कोई भी सभ्य जाति इस्लाम के इतिहास से उतनी अपरिचित नहीं है जितने हिन्दू है और संसार की कोई भी जाति इस्लाम को उतनी घृणा से नहीं देखती, जितनी घृणा से हिन्दू देखते हैं।[४०] इस्लाम के संदर्भ में जो भावनाएँ और मान्यताएँ इस देश में प्रचलित है, उनका खंडन राष्ट्रीय एकता और हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द के लिए तो

आवश्यक है ही, किन्तु वैज्ञानिक-तार्किक सोच और ऐतिहासिक सत्य के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। दूसरे रायसाहब की उपर्युक्त जो बात है वह भारतीय मुसलमानों पर भी उतनी ही लागू होती है, क्योंकि इस देश के मुसलमानों में भी इस्लाम के मौलिक स्वभाव, गुण और उसके ऐतिहासिक महत्त्व का ज्ञान बहुत ही सतही और छिछले प्रकार का है। इसका लाभ दोनों तरफ के कट्टरतावादी तत्व उठाते है। इसका एक कारण यह है कि इस्लाम के आरंभिक खलीफा जिन्होंने इस्लाम का झंड़ा विश्व में लहराया वे अलग थे और भारत पर आक्रमण करनेवाले मुस्लमान आक्रान्ता अलग थे। दूसरे यह भी एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि किसी देश या वर्ग या वर्ण के पददलित लोग जब मुक्ति के विकल्प के लिए दूसरा धर्म अंगीकृत करते है तब वे आवश्यकता से अधिक कट्टर हो जाते है और यदि उनके हाथ में सत्ता के सूत्र चले जाते है तब वे दुगुने आवेग से अपना प्रतिशोध पूरा करते हैं और ऐसी स्थिति में वे अधिक क्रूर, निर्दय और घातक सिद्ध होते है। इस संदर्भ में डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने दो उदाहरण प्रस्तुत किए है। एक उदाहरण तेरहवीं सदी के रत्नजू नामक व्यक्ति का है, जो कश्मीर के राजा सहदेव के दरबार में किसी उच्च पद पर आसीन थे और जो हिन्दू होना चाहते थे, हिन्दू पंड़ितों ने उन्हें हिन्दू नहीं बनाया, फलतः वे मुसलमान हो गये। उनकी मृत्यु के बाद उनके बेटे शाहमीर ने राजा सहदेव का वध किया और वह स्वयं राजा बन बैठा। जिन ब्राह्मणों ने रतनजू को हिन्दू नहीं बनने दिया था उनको बोरों में बाँधकर मीर ने झेलम में डाल दिया। श्रीनगर में जहाँ इन लोगों को डुबोया गया था वह स्थान आज भी "बट-मज़ार" के नाम से प्रसिद्ध है।[४१] दूसरा उदाहरण बंगाल में "काला पहाड़" नाम से विख्यात या कुख्यात मुसलमान सरदार है जिसने असंख्य बंगाली ब्राह्मणों को जबरन मुसलमान बनाया था। वह स्वयं भी पहले हिन्दू था और ब्राह्मणों के अत्याचारों से आरीज आकर मुसलमान हो गया था। मुसलमान होने के बाद उसने वह नहीं किया जो किसी स्वाभिमानी पुरुष को करना चाहिए।[४२]

ऐसा बिलकुल स्वाभाविक है, क्योंकि यह स्वस्थ क्रिया नहीं, अपितु भयंकर प्रतिक्रिया होती है जिसमें भयंकर प्रतिहिंसा का भाव ही सामने आता है। ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि भारत पर आक्रमण करनेवाले आक्रान्त मुसलमान शासक भी मूलतः अरब नस्ल के नहीं थे। वे उन मुसलमानों थे जो बाद में मुसलमान हुए। इस संदर्भ में डॉ. दिनकर ने बताया है कि भारत में क्रूरता बरतनेवाले और मंदिरों को नष्ट करनेवाले महमूद गजनवी और मुहम्मद घोरी अरबी या ईरानी नस्ल के नहीं थे, न इतिहास में उन्होंने सच्चे इस्लाम का प्रतिनिधित्व ही किया है।[४३] पाँचवी शताब्दी में मध्य एशिया में हूण नामक एक बर्बर जाति का बहुत आतंक था। मध्य एशिया में हूणों के इस आतंक और प्रभाव को नष्ट करने का काम नौशीखां ने किया था। किन्तु इस काम में पश्चिमी तुर्क उसके सहायक थे। वे तुर्क वस्तुतः हूणों की ही एक शाखा से थे जिसका असली नाम असेना था। असेना हूण जाति के लोग पाँचवी शताब्दी में फान्सू प्रांत में एक पहाड़ के पास रहते थे। उस पहाड़ का आकार "फौजी टोपी जैसा था" जिसे हूण भाषा में तुर्क कहते हैं। इसी से वे लोग तुर्क कहलाने लगे।[४४] बाद में ये तुर्क मुसलमान हो गये। ये तुर्क वीरता और शारीरिक शक्ति के आगार थे। जब अरब साम्राज्य टूटने और बिखरने लगा तो ये तुर्क सरदार और सुलतान बन बैठे। इन्हीं सरदारों में एक अलप्तगीन था जिसने मौका पाकर गज़नी में अपनी अलग रियासत खड़ी कर ली। अलप्तगीन के बाद उसका दामाद सुबुक्तगीन गज़नी का सुलतान हुआ। सुबुक्तगीन का पुत्र महमूद गजनवी है, जिसने भारत पर सत्रह बार चढ़ाई की थी और जिसने सोमनाथ की मूर्ति को ध्वंस किया था। अतएव यह समझना चाहिए कि जिस मुसलमान के कारण इस्लाम भारत में बदनाम हुआ, वह अरब या ईरानी कम था, तुर्क या हूण अधिक था और अरबी तथा ईरानी संस्कृतियों की उदारता का उसमें सर्वथा अभाव था। भारतमें मुसलमानी राज्य की नींव डालनेवाला मुहम्मदगोरी भी पठान था और उसके पूर्वज भी तुर्क या हूण रहे होंगे।[४५] हमारे यहाँ आज भी

साधारण भाषा में मुसलमान को ''तुरक'' कहा जाता है। कबीर में अनेक स्थानों पर मुसलमान के लिए ''तुरक'' शब्द का प्रयोग मिलता है।

भारत में मुगलवंश की नींव डालनेवाला बाबर अपना संबंध मंगोल जाति से बताता है जो बड़े ही भयंकर वीर थे। इनका सबसे बड़े नेता चंगेजखान (११५५ ई.) हुआ, जिसने केवल विश्व-विजय के उद्देश्य से बुखारा, समरकंद, देशत, बलख आदि प्रांतो के अनेक बड़े-बड़े नगरों को भूनकर रख दिया था। यह चंगेजखान भारत तक आया था, किन्तु किन्हीं कारणों से वह शीघ्र ही लौट गया था। निर्दयता, क्रूरता और हिंसा में उसका कोई सानी नहीं है। उसके उत्तराधिकारी हलाकू ने बगदाद को उजाड़ते हुए[४६] वहाँ के विख्यात पुस्तकालय को जला डाला था। आज भी बहुत-से कट्टर मुसलमान स्वयं को चंगेज और हलाकू की संतान बताते हैं। डॉ. दिनकर बताते है कि चंगेज और हलाकू मुसलमान नहीं बल्कि शायद भ्रष्ट किस्म के बौद्ध थे।

''मुसलमान अपने को उनका वंशज मानें, यह इतिहास विरुद्ध बात है।''[४७]

भारत पर सर्वप्रथम मुहम्मद-बिन-कासिम ने सन् ७११ में आक्रमण किया और उसने सिंध और मुलतान पर अपना कब्जा स्थापित किया। परंतु उसको शीघ्र ही वापस बुला दिया गया और ये प्रदेश पुनः स्वतंत्र हो गये। इसके तीन सौ वर्ष बाद मुहम्मद गज़नवी ने भारत पर आक्रमण करने शुरू किये। उसने १०००-१०२६ ई. बीच में लगभग सत्रह चढ़ाइयाँ की, लेकिन उसका मकसद भारत पर अपना शासन स्थापित करना नहीं था, बल्कि भारत की अखूट संपत्ति पर उसकी नज़र थी। फलतः भारत के मंदिरों को उसने अपना बनाया। गुजरात के सोमनाथ के मंदिर को भी उसने ही लूटा था। वह एक भयनाक योद्धा था और मंदिरों के साथ-साथ उसने कई नगरों को भी उजाड़ दिया। मुहम्मद गज़नवी के पश्चात् सन् ११७५ ई. में मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया, परंतु उसका लक्ष्य मुहम्मद गज़नवी जैसा नहीं था।

वह तो अपने राज्य का विस्तार चाहता था। उसने पहले मुलतान और पंजाब पर अपना शासन स्थापित किया। उसके पश्चात् वह दिल्ली की ओर बढ़ आया। दिल्ली के राजपूत राजा पृथ्वीराज चौहान ने सन् ११९१ में तराहन के मैदान में उसे हराया, लेकिन इस पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए उसने पुनः सन् ११९२ में आक्रमण किया और उसी तरहान के मैदान पर उसने शौर्य और पराक्रम की प्रतिमूर्ति ऐसे पृथ्वीराज चौहान को पराजित किया। वस्तुतः राजपूत राजाओं के बीच परस्पर वैर-भाव और उनके मिथ्याभिमान के कारण ही उनकी हार हुई। यह हार निर्णायक सिद्ध हुई क्योंकि उसके कारण ही भारत में मुस्लिम शासन की नींव पड़ी। सन् १२०६ ई. में मुहम्मद गोरी की हत्या हुई।

चंद बरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' में मुहम्मद गोरी के निधन के संदर्भ में यह कथा मिलती है। जिस युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय हुई थी उसमें चन्द उपस्थित नहीं थे, क्योंकि हाहुली हम्मीर नामक एक सामंत ने उन्हें पहले ही कैद कर लिया था। पृथ्वीराज को पराजित कर के गोरी उन्हें बंदी बना या उनकी आंखे फोड़कर गज़नवी ले जाता है। चन्द जब हाहुली की कैद से मुक्त होकर वापस लौटते हैं तब उन्हें इस सारे वृतान्त का पता चलता है। वह शेष पृथ्वीराजरासो की प्रति अपने प्रिय पुत्र जल्हण को सौंपकर योगी का बाना धारण कर के गज़नी के लिए प्रस्थान करते हैं और गोरी के दरबार में जाकर पृथ्वीराज के युद्ध-कौशल की तारीफ़ करते हुए कहते है कि पृथ्वीराज लोहे के सात तवों को एक साथ बेध सकते हैं। गोरी को इस बात पर विश्वास नहीं बैठता और वह पृथ्वीराज के रण-कौशल का इम्तिहान लेने की ठानता है। निश्चित ही इस पर दरबार में चंद का एक सांकेतिक छंद के पढ़ने पर पृथ्वीराज बाण चलाते है जो गोरी के तालु को बेधते हुए आरपार हो जाता है। गोरी के अंगरक्षक दोनों को पकड़ ले इसके पूर्व वे एक-दूसरे को कटार भोंक कर स्वयं मृत्यु का कारण कहते हैं।[४८] जो भी हो सन् १२०६ ई. में गोरी की हत्या होती है, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

(क) सल्तनत समय :- (१२०६-१५२६ ई.) :-

सन् १२०६ से सन् १५२६ तक का जो समय है उसे मुस्लिम सल्तनत का समय कहा जाता है। इन तीन सौ वर्षों के समय में दिल्ली के तखत पर पाँच मुस्लिम वंश और लगभग ३२ सुलतानों ने राज्य किया जिनमें गुलाम वंश (१२०६-१२९० ई.), खिलजी वंश (१२९०-१३२० ई.), तुगलक वंश (१३२०-१४१४ ई.) सैयद वंश (१४१४-१४५० ई.) और लोदी वंश (१४५०-१५२६ ई.) आदि हैं।[४९] यहाँ बहुत संक्षेप में इन पर प्रकाश डालने का उपक्रम है।

गुलाम वंश (१२०६-१२९० ई.) :-

गुलाम वंश की स्थापना कुत्बुद्दीन ऐबक नामक एक सेनापति ने की जो मुहम्मद गोरी का गुलाम था, गोरी की मृत्यु के उपरांत वह दिल्ली के तख्त पर बतौर सुलतान गादीनशीन हुआ। वह पहला मुस्लिम शासक है जिसने शक्तिशाली मुसलमान सरदारों से वैवाहिक संबंध स्थापित किये और भारत में एक मजबूत राज्य की नींव डाली। उसके समय में स्थापत्य-कला ने खूब विकास किया और दिल्ली का विश्वविख्यात २३२ फीट ऊँचा कुतुबमिनार उसी ने बँधवाया था। सन् १२१० ई. में उसके अपने घोड़े से गिरने के कारण जो चोट आयी उसके कारण उसकी मृत्यु हुई।[५०]

गुलाम वंश के अन्य ख्यातनाम सुलतानों में इल्तुतमिश (१२११-१२३६:, रजिया बेगम (१२३६-१२४० ई)। बल्बन (१२६६-१२८६ ई.) आदि है। गुलाम बंश के अंतमि कमजोर सुलतान को हराकर सन् १२९० ई. में जलालुद्दीन खिलजीने खिलजी वंश की स्थापना की। वह उदार, न्यायी और धार्मिक वृत्ति का व्यक्ति था। उसकी हत्या उसके महत्वाकांक्षी भतीजे अल्लाउद्दीन खिलजी ने सन् १२९६ में की और १९/२० वर्ष दिल्ली के तख्त पर रहा। उसने अनेक लड़ाइयाँ सफलतापूर्वक लड़ी और गुजरात, रणथंभोर, चितौड़, मालवा आदि प्रदेशों को जीत लिया और दिल्ली सल्तनत को सुदूर

दक्षिण तक पहुँचा दिया। उसने मंगोलों के अनेक हमलों को भी नाकामयाब बनाया। वह एक अच्छा प्रबंधक था और उसने पहली बार चीज़-वस्तुओं के दाम को व्यवस्थित किया। उसके वजीर मलिक काफूर ने उसे सन् १३१६ में जहर देकर मार डाला। उसके पश्चात् सन् १३२० ई. से १४१२ ई. तक में दिल्ली के तख्त पर तुलगलक वंश का शासन रहा। गयासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक आदि कुछ ख्यातनाम सुलतान हुए। गयासुद्दीन तुगलक ने ही दिल्ली के पास तुगलकाबाद नामक नगर की स्थापना की थी। मुहम्मद तुगलक बहुत बुद्धिशाली, न्याय पूर्ण, एवं धार्मिक प्रकृति का सुलतान था; किन्तु उसमें व्यावहारिक बुद्धि का अभाव था। अतः कुछ इतिहासकारों ने उसे पागल करार दिया था। फिरोजशाह भी एक रहमदिल, नेक, पाक और खुदा से डरनेवाला सुलतान था। उसने अपने समय में अनेक जन-हित के कार्य किये। उसने अनेक नहरों को खुदवाया, अस्पताल और स्कूल खोले और अनेक नये नगरों का निर्माण किया। उसकी सन् १३८८ ई. में मृत्यु हुई, किन्तु तुगलक वंश सन् १४१२ तक चला। तुलगलक वंश के समय में ही तुर्कस्तान के तैमूरलंग ने दिल्ली पर सन् १३९८ में हमला किया था। और पांच दिन तक दिल्ली में कत्लेआम-चलाया था। वह पंदह दिन तक दिल्ली में रहा और अखूट संपत्ति के साथ समरकंद लौट गया। यह उसने दिल्ली में जो तबाही मचायी, कतल किया, उसे सुनकर कलेजा कांपने लगता है।[५१]

गुलाम, खिलजी और तुगलक वंश के बाद दिल्ली के तख्त पर सैयद वंश और लोदी वंश ने सन् १४१४ ई. से १५२६ ई. तक राज्य किया। सैयद वंश का शासन सन् १४१४ ई. से १४५० ई. तक रहा। उसके बाद बहलोल लोदी का पुत्र सिकंदर लोदी एक शक्तिशाली शासक था और उसने बिहार और तिरहूत को भी जीत लिया। उसने ही आगरा का निर्माण किया और वह अपनी राजधानी दिल्ली से आगरा ले आया। सिकंदर लोदी का पुत्र इब्राहीम लोदी क्रूर और घमंडी था, अतः अनेक अमीर उमरा उलेमा उसके खिलाफ

हो गये । पंजाब के सूबै दौलतखान ने ही काबूल के बादशाह बाबर को दिल्ली पर चढ़ाई के लिए आमंत्रित किया था और सन् १५२६ ई. में प्रसिद्ध पानीपत की लड़ाई में बाबरने इब्राहीम लोदी को पराजित कर के मुगलवंश की स्थापना की।[५२]

(ख) मुगल समय (१५२६-१८५७ ई.) :-

उपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि बाबर ने सन् १५२६ ई. में लोदी वंश के इब्राहीम लोदी को पराजित करके भारत में मुगलवंश की नींव डाली। बाबर के पश्चात् जो मुगल बादशाह हुए उन्होंने मुगल साम्राज्य का विस्तार किया। औरंगजेब के समय तक लगभग समग्र भारत मुगल साम्राज्य का अंग बन चुका था। अतः बाबर के आगमन से लेकर औरंगज़ेब की मृत्यु तक (सन् १५२६ ई.- १७०७ ई.) के समय को हम मुगल साम्राज्य का समय कह सकते हैं। औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् मुगलों का पतन शुरू हुआ और अंतिम मुगल बादशाह को अंग्रेजों ने पकड़कर रंगून की जेल में डाल दिया। इस प्रकार सन् १८५७ में मुगल राज्य का अंत आ गया। सन् १५२६ के १७०७ तक क़ा समय राष्ट्रीय एकता तथा समृद्धि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समय था। इतिहासकार इस संदर्भ में कहते है -

"The period between the coming of Babor and the death of Aurangjed in 1707 is one of the Most distinct and glorious period of Indian History. under the Mnghals the country attained political unity and administrative cohesion Trade and industry flourished. People were largely happy and prosperous. Art and letter's blossomed. As a result the fame of India's wealth and splendour spread through the world."[५३]

जाहीरूद्दीन मोहम्मद बाबर (१५२६-३० ई.) भारत का प्रथम मुगल बादशाह है। पितृ-पक्ष से वह तैमूर वंश मातृपक्ष से चंगेजखान की वंश-

परंपरा में आता है। इब्राहीम लोदी को पानीपत के प्रथम युद्ध (१५२६ ई.) में हराकर उसने दिल्ली के तख्त पर अपना कब्जा किया। उसके बाद आगरा को भी जीत लिया। राजपूतों के साथ कई लड़ाइयों के पश्चात् उसने राज्य की सीमा में पंजाब, उत्तरप्रदेश और उत्तरी बिहार को भी मिला दिया। ४८ साल की कम उम्र में सन् १५३० ई. में उसकी मृत्यु हुई, अतः अपने साम्राज्य को जमाने का अधिक समय उसे नहीं मिला।

बाबर के पश्चात् हुमायूँ (१५३०-४० और १५५५-५६ ई.) दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसमें कई श्लाघनीय गुण थे। पर एक कमजोरी थी। वह आरामतलब था और सही निर्णय लेने में कई बार देर कर देता था। गुजरात का बहादुरशाह तथा बिहार का सूबा शेरशाह सूरी उसके दो प्रबल शत्रु थे। शेरशाह ने उसे भारत के बाहर खदेड़ दिया और पंद्रह साल तक वह इधर-उधर की ठोकरे खाता रहा। सन् १५४५ में शेरशाह की मृत्यु के उपरांत उसके वारस सिंकदर सूरी को हराकर उसने पुनः दिल्ली पर सन् १५५५ ई. में कब्जा कायम कर लिया। किन्तु उसके एक ही वर्ष बाद सन् १५५६ में उसकी मृत्यु हुई।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है सन् १५४० से १५५५ ई. तक अफगानों का शासन रहा। शेरशाह सूरी केवल चार साल तक गद्दी पर रहा पर उसने कई प्रजा-कल्याण के काम किये। उसने राज्य में सुव्यवस्था स्थापित की, महेसूली व्यवस्था को दुरस्त किया, कई रास्ते बनवाये, उनके दोनों और छायादार वृक्ष लगवाये नियत अंतराल पर अतिथि-गृह और सराय बनवाये। शेरशाह की गणना अकबर- से महान बादशाहों में होती है, किन्तु गादी पर बैठने के पश्चात् वह केवल पाँच साल ही जीवित रहा और अफ़गान शासन की डोर कमजोर वारिसों के हाथ चली गयी, अतः हूमायूँ ने उस पर कब्जा हासिल करके पुनः मुगल-साम्राज्य को स्थापित किया।

मुगल बादशाहों में जितना नाम अकबर (१५५६-१६०५ ई.) का है, उतना किसी का नहीं। विश्व के महान सम्राटो में उसकी गणना होती है।

उसके समय में मुगल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। उसने समूचे उत्तरी एशिया को जोड़कर अफगानिस्तान से लेकर बंगाल और कश्मीर से लेकर गोदावरी तक मुगल-साम्राज्य को विकसित किया। जब १४ साल की उम्र में १४ फरवरी सन् १५५६ में अकबर की ताज़पोशी हुई, तब वह न राजा था, न उसके पास कोई राज्य, क्योंकि हुमायूँ की मृत्यु के उपरांत हेमू नामक एक हिन्दू सेनापति ने विक्रमादित्य नाम धारण करके दिल्ली की गादी पर कब्जा कर लिया था। लेकिन बैरमखाँ की मदद से अकबर ने हेमू को पानीपत की दूसरी लड़ाई (१५५६ ई.) में पराजित किया और इस प्रकार दिल्ली और आगरा पर मुगलों का झंडा फहराया। अकबर एक बहादुर सेनापति और कुशल प्रबंधक था। अशिक्षित होते हुए भी वह पूर्णतया सुसंस्कृत था। उसने अपनी प्रजा में सहनशीलता और सहानुभूति की नीति को चलाया। राजपूतों के साथ मैत्री-संबंध कायम करते हुए वैवाहिक संबंध भी स्थापित किये और अंबर-नरेश की पुत्री जोधाबाई से विवाह किया। उसने "जजिया" कर दूर किया और "दीनेइलाही" नामक एक नये धर्म की स्थापना की जिसमें उसने सभी धर्मों के उम्दा तत्वों को शामिल किया। मुगलेआज़म अकबर के संदर्भ में कहा गया है-

"His long, reign of five decades forms the bright chapter of the Indian History during which the country Made rapid progress in all walks of life, establishment of regular revenne system, encourgement of art and literature and constrnction of Magnificent buildings and Monuments. Akbar also brought about social reforms and made efforts for the Abolition of sati and child-Marriage. During his rule the public services were open to all on Merit, without discrimination on the basis of caste, sect or colour. Akbar died in 1605 and was buried at sikandara near Agra."[५४]

अकबर के पश्चात् जहाँगीर (१६०५-१६२७ ई.) शाहजहाँ (१६२७-१६५८ ई.) और औरंगजेब (१६५८-१७०७ ई.) ने मुगल सल्तनत को संभाला। अकबर की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र सलीम नुरुद्दीन मोहम्मद जहाँगीर का खिताब धारण करके गद्दीनशीन हुआ। वह अपनी बेगम नूरजहाँ को बेइन्तहा प्यार करता था और सत्ता की बागडोर दरअसल नूरजहाँ के हाथों में थी। वह एक निहायत उम्दा, नेकदिल, रहमदिल और न्यायप्रिय व्यक्ति था। वह प्रकृति-प्रेमी और कलाप्रेमी था। चित्रकला के प्रति उसकी विशेष रुझान थी। स्थापत्य के प्रति उसका विशेष लगाव था। अकबर का भव्य मकबरा और ऐतमात-उद-दौला का मकबरा उसके द्वारा निर्मित भव्य स्थापत्य के उदाहरण है।

जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र खुर्रम जो बाद में शाहजहाँ के नाम से विख्यात हुआ गद्दीनशीन हुआ। उसके संदर्भ में कहा गया है -

"Shahjhan was a man of great executive ability and have a love for art and architecture. An able administrator, he never felt shy of looking into the details and intricacies of administration. As a result complete peace law and order prevailed in the country. Art and literature made phenomenal progress in his reign. But above all, he was in a special sense, the architectural king of his days who left for posterity the immortal gifts like "Taj Mahal" (Agra) "Jama Masid" and "Red Fort" at Delhi and the Agra fort [Which was reconstructed under his inspiration and suprvision]"[५५]

इसे दुर्भाग्यपूर्ण विडंबना ही समझना चाहिए कि अपनी जिंदगी के अंतिम दिनों में उसे उसी आग्रा के किले में नज़र कैद रखा गया और यह कार्य उसके ही पुत्र औरंगज़ेब ने किया था। वहीं उसकी मृत्यु हुई। एक उम्दा बादशाह के रूप में उसे भारतीय इतिहास में हमेशा याद रखा

जायेगा।

शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् उसके चार बेटो में- दारा, शुजा, औरंगज़ेब और मुराद में गद्दी के लिए जंग छिड़ गई जिसमें अंततोगत्वा औरंगज़ेब सफल हुआ। उसने लगभग ४८ वर्षों तक राज्य किया, उसने राज्य की सीमाओं को भी बढ़ाया, किन्तु अपनी संकुचित एवं धर्मान्ध दृष्टि के कारण उसने मुगल साम्राज्य के मित्र ऐसे राजपूत राजाओं का विश्वास खो दिया। लोगों में भी खासा अप्रिय हो उठा। दक्षिण में मराठा तथा उत्तर पश्चिमी विस्तार में सिक्ख क्रमशः शिवाजी और गुरु गोविंदसिंह के नेतृत्व में उभरकर आये। जब औरंगज़ेब की मृत्यु हुई (१७०७ ई. में) तब मुगल साम्राज्य विस्तृत किन्तु छिन्न-भिन्न एवं कमजोर था और उसके बाद वह निरंतर टूटता गया। अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह ज़फर को अंग्रजों ने कैदी बनाकर रंगून की जेल में भेज दिया था (१८५७ ई.) और उसके साथ ही महान मुगल साम्राज्य का अंत आ गया।

मुस्लिम शासन के दौरान के अन्य प्रभावशाली व्यक्तित्व :-

मुस्लिम शासन के दौरान जिन उल्लेखनीय व्यक्तियों ने भारतीय समाज और संस्कृति को प्रभावित किया और जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयत्न किये उनमें अमीर खुसरो, निजामुद्दीन चिश्ती, कबीर, नानक तथा दादू आदि अन्य संत कवि, मलिक मुहम्मद जायसी तथा अन्य सूफी कवि हुए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस बात का स्वीकार किया है कि हिन्दू-हृदय और मुस्लमान हृदय को आमने-सामने करके उनके बीच का अजनबीपन मिटानेवालों में इनका (सूफी कवियों का) नाम लेना पड़ेगा[५६] धार्मिक क्षेत्र में क्रांति लानेवालों में चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई, तुलसीदास, संत तुकाराम आदि भी इसी समय में आते हैं। सिक्ख संप्रदाय के गुरु नानक, गुरु आनंददेव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव, गुरु हरगोविंददास, गुरु हरराय, गुरु हरकिशन, गुरु तेग बहादुर, गुरु गोविंदराय आदि गुरुओं ने सामाजिक

एकता का काम किया। गुरु गोविंदसिंह तथा छत्रपति शिवाजी और राणा प्रताप जैसे व्यक्ति भी इसी दौरान हुए।

हिन्दू-मुस्लिम समरसता और गंगा-जमुनी संस्कृति :-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुसलमान सुलतानों और मुगल बादशाहों में कुछेक अपवादों को छोड़कर अधिकांश सुलतान और बादशाह प्रजा-वात्सल थे और उन्होंने अनेक प्रजा-कल्याण के काम किये। भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला और साहित्य में उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता। यह भी एक तथ्य मूलक बात है कि शाहजहाँ के पश्चात् दारा यदि गादीनशीन होता तो भारत का इतिहास कुछ और तरह का होता। इन सदियों में जहाँ कहीं-कहीं हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष होते रहे, वहाँ उनमें पारस्परिक मेल-मिलाप भी हुआ और गंगा-जमुना के दोआबे में एक मिली-जुली गंगा-जमुनी संस्कृति विकसित हुई। इसे भी गौरतलब करना चाहिए कि इस हिन्दू-मुस्लिम एकता में हमेशा दोनों तरफ के कट्टरवादी तत्वों ने जहर घोलने का और आग उगलने का काम किया है और आज भी सामान्य जनता तो शांति और मेल-मिलाप चाहती है, परंतु ऐसे तत्व ही उसमें पलिता चांपने का कार्य कर रहे हैं। भारतीय मुस्लिम विमर्श और संदर्भ को समझने के लिए उक्त विवेचन आवश्यक था, अतएव उसकी चर्चा यहाँ की गई है।

इस्लाम धर्म :-

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब थे, यह पूर्व के पृष्ठों में बताया गया है। उनका जन्म अरब के मक्का शहर में सन् ५७० ई. में हुआ था। इस्लाम का अर्थ होता है समर्पण अथवा उत्सर्ग, जिसका अभिप्राय है अल्लाह की इच्छा के सामने झुकना।[५७] इस्लाम केवल एक ही ईश्वर में विश्वास करता है। पथभ्रष्ट मानवता को वह समय-समय पर अपने पैगम्बर के द्वारा सही मार्ग बतलाता है। इन पैगम्बरों में मोहम्मद अंतिम पैगम्बर थे।

उनका ध्येय पथ-भ्रष्ट मानवता को अल्लाह का संदेश समझाना था जो उनको ''जबरील'' नामक देवदूत से प्राप्त हुआ। पैगम्बर का अर्थ ''पैगाम या संदेश लाने वाला'' मोहम्मद साहब अल्लाह का संदेश पृथ्वी पर लाये थे इसलिए ही उन्हें पैगम्बर कहा जाता है। मोहम्मद साहब को रसूल भी कहा जाता है। क्योंकि उन्होंने परमात्मा और मनुष्यों के नींव धर्मदूत (रसूल) का काम किया था। यह भी पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट हुआहै कि इस्लाम का मूलमंत्र ''लाइल्लाह इल्लिलाह मुहम्मदुर्रसूलिल्लाह'' है, जिसका अर्थ है अल्लाह के सिवा और कोई पूजनीय नहीं है तथा मोहम्मद उसके रसूल (दूत) है। इस्लाम धर्म के दो प्रमुख ग्रंथ है- ''कुरान'' था ''हदीस''। कुरान में वह ज्ञान संग्रहीत है जो ईश्वर ने अपने दूत मोहम्मद को दिया और हदीस में स्वयं मुहम्मद साहब के द्वारा दिए गए उपदेशों का संग्रह है।[५८]

मुसलमानों के पाँच मूलभूत कर्तव्यों का उल्लेख भी पहले हो चुका है। कुरान में एकेश्वरवाद पर जोर दिया गया है। इस्लाम धर्म मूर्तिपूजा और पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करता। उसमें यह माना गया है कि कयामत के दिन सब आत्माएँ अपनी-अपनी कब्रों में से उठकर अल्लाह के सामने जाती है; वहाँ उनका न्याय होता है ओर फिर उनके कर्मों के अनुसार उन्हें जन्नत (स्वर्ग) या जहुन्नत (नरक) मिलता है। कुरान से स्पष्ट एवं निश्चित् उत्तर प्राप्त नहीं होने की स्थिति में पैगम्बर के निर्णय, उनके उपदेश, आचरण तथा व्यवहार को निर्णायक मानने की बात भी इस्लाम में कही गयी है। मोहम्मद साहब की मृत्यु के उपरांत इस्लाम का नेतृत्व खलीफाओं के हाथ में आया, उनमें अबूबक्र, उमर, उस्मान आदि प्रमुख खलीफा थे। ये आरंभिक खलीफा भी पाक, नेक और सादगी तथा सदाचार के अवतार थे।

इस्लाम धर्म की कतिपय विशेषताएँ :-

अभी तक के विवेचन से इस्लाम धर्म की कतिपय विशेषताओं को उद्घाटित किया जा सकता है, जो इस प्रकार है,

(१) इस्लाम एकेश्वरवाद में विश्वास करता है, हिन्दुओं की तरह वह अनेक देवताओं में विश्वास नहीं करता।

(२) इस्लाम में पैगम्बर की परंपरा स्वीकार की गयी है। पैगम्बर ईश्वरीय उपदेशों को मनुष्यों तक पहुँचाते हैं।

(३) इस्लाम समानता के सिद्धांत पर आधारित है। लिंग, जाति, व्यवसाय तथा अन्य आधारों पर इस्लाम में भेदभाव नहीं किया जाता। ईश्वर के सम्मुख समान हैं।

(४) इस्लाम पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करता।

(५) इस्लाम ईश्वर के प्रति समर्पण एवं उसी पर विश्वास करने पर जोर देता है।

(६) इस्लाम मूर्तिपूजा को नकारता है। वह निराकर ईश्वर में विश्वास करता है।

(७) इस्लाम में प्रत्येक व्यक्ति को पाँच धार्मिक कृत्य-कलमा पढ़ना, नमाज पढ़ना, रोजा रखना, जकात, हज करने का निर्देश दिया गया है।

(८) इस्लाम मानवीय स्वतंत्रता में विश्वास नहीं करता। वह यह मानता है कि मनुष्य पूरी तरह से ईश्वर की इच्छा के अधीन हैं।

इस्लाम की इन विशेषताओं ने उनके विवाह, परिवार एवं स्त्रियों की स्थिति को भी प्रभावित किया है जिसकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ अपेक्षित है।

मुस्लिम विवाह :-

मुसलमानों में सामाजिक जीवन के सारे कार्य उनके धार्मिक ग्रंथ कुरान के आदेशानुसार संपन्न होते है। इस प्रकार कुरान मुस्लिम रीति-रिवाज का मुख्य स्रोत है। वह मुस्लिम जीवन-पद्धति के लिए सर्वोपरि है। किन्तु मुस्लिम रीति-रिवाज और जीवन-पद्धति सर्वत्र एक जैसी नहीं है, देश और जीवन-पद्धति सर्वत्र एक जैसी नहीं है। देश और काल के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहा है। एक तरह से देखा जाए तो मुस्लिम धर्म सनातनी

अरबी धर्म का परिवर्तित रूप है, लिहाजा मुस्लिम सामाजिक व्यवस्थाओं पर सनातनी अरबी व्यवस्थाओं का भी प्रभाव पड़ा है। प्राचीन अरब समाज में प्रचलित विवाह की विशेषताओं का उल्लेख राबर्टसन स्मिथ ने इस प्रकार किया है।

(१) स्त्री अपने शोहर का चुनाव करने में स्वतंत्र थी।

(२) वह अपने शोहर को डेरे या तम्बू में बुलाती, उसके साथ संबंध रखती और जब चाहे अपनी इच्छानुसार उसे बाहर निकाल देती।

(३) ऐसे विवाह से उत्पन्न संतानों के भरण-पोषण और संरक्षण का भार स्त्री के नाते रिश्तेदारों पर था। इस प्रकार के विवाह को "बिना विवाह" कहा जाता था।[५९]

समय के साथ इस विवाह में परिवर्तन आया और इसका स्थान "बाल-विवाह" अथवा "आधिपत्य विवाह" ने ले लिया। इसमें स्त्री की स्वतंत्रता समाप्त हुई और अब यह पति के घर रहने लगी और संतानें पति के गोत्र से सबंधित हुई। अब परिवार में पुरुष का आधिपत्य एवं स्वेच्छाचारिता कायम हुई। स्त्री का विवाह-विच्छेद का अधिकार समाप्त हो गया। फिर भी विवाह का नया रूप पुरानी पद्धति से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं हुआ। एक लम्बे समय तक हिन्दूओं के संपर्क में रहने के कारण मुस्लिम विवाह-पद्धति में हिन्दू विवाह-पद्धति के कई तत्व प्रवेश करते गये हैं। दोनों की विवाह पद्धति में कुछ साम्यताओं का एक कारण यह भी है कि भारत के अधिकत्तर मुसलमान मूलतः हिन्दू ही है और धर्म-परिवर्तन कर के मुसलमान बने हैं। इस संदर्भ में डॉ. कापड़िया ने लिखा है - "भारतीय मुसलमानों का बहुसंख्यक भाग अरब देश में अथवा संसार के सभी अन्य भाग के इस्लामी बंधुओं की अपेक्षा हिन्दूओं से अधिक सादृश्य या समानता रखता है। उन हिन्दूओंने, जिन्होंने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया, इस्लाम को मानते हुए भी अपने प्राचीन धार्मिक विश्वासों तथा सामाजिक व्यवहारों का परित्याग नहीं किया।"[६०] इस प्रकार भारतीय मुसलमानों की विवाह पद्धति पर हिन्दू एवं

इस्लाम दोंनो ही धर्मों का प्रभाव पड़ा है। फिर भी वह हिन्दूओं की विवाह-पद्धति से मौलिक अंतर रखती है। मुसलमानों में विवाह को ''निकाह'' कहते है, जिसका शाब्दिक अर्थ है नर-नारी का विषयी समागम। मुस्लिम विवाह एक धार्मिक संस्कार नहीं, वरन् एक दीवानी समझौता है जिसका उद्देश्य घर बसाना, संतानोत्पत्ति करना एवं उन्हें वैध घोषित करना है। इसे परिभाषित करते हुए डी.एफ. मुल्ला ने लिखा है- ''निकाह (विवाह) एक विशिष्ट समझोता है जिसका उद्देश्य बच्चे उत्पन्न करना और उनको वैध घोषित करना है।''[६१] दूसरे विद्वान अमीर अली के अनुसार मुस्लिम विवाह एक कानूनी संविदा है जिसके लिए न तो किसी पुरोहित (मुल्ला) की आवश्यकता है और न किसी कर्म-कांड की।[६२]

एक अन्य मुस्लिम विद्वान हेदयाने लिखा है कि मुस्लिम विवाह एक प्रकार का समझौता है जिसका उद्देश्य यौनिक संबंधों को स्थापित कर बच्चों को पैदा करना और उनके जन्म को कानूनी रूप देना है। वह समाज के हित में पति-पत्नी और उनके उत्पन्न संतानों के अधिकारों एवं कर्तव्यों को निर्धारित कर के उनके सामाजिक जीवन का नियमन करता है।[६३] अतः कह सकते है कि मुस्लिम विवाह कानून के अनुसार, स्त्री-पुरुष के बीच किया गया बिना शर्त का वह संविदा (unconditional contract) है, जिसका एक मात्र उद्देश्य संतानोत्पत्ति कर उन बच्चों को वैध रूप प्रदान करना है। डॉ. के.एम. कापड़िया इस संदर्भ में लिखते है कि इस्लाम में विवाह एक अनुबंध (contract) है जिसमें दो साक्षियों के हस्ताक्षर होते है। इस अनुबंध का प्रतिफल ''महर'' अर्थात् वधू को भेट दी जाती है।[६४]

अतः कहा जा सकता है कि मुस्लिम विवाह एक प्रकार का समझौता है और लिहाजा उसमें भारतीय समझौता अधिनियम की लगभग सभी शर्ते मौजूद हैं। यथा -

(१) समझौते के लिए किसी भी पक्ष से एक प्रस्ताव रखा जाय।

(२) इस प्रस्ताव को दोनों पक्षों की ओर से स्वतंत्र स्वीकृति प्राप्त हो।

(३) समझौता करने के लिए दोनों पक्ष सक्षम हों, अर्थात् वे अल्पवयस्क या पागल न हों।

(४) अल्पवस्यक होने की स्थिति में उनके संरक्षको द्वारा उसकी स्वीकृति प्रदान की जाय।

(५) समझौते के प्रतिफल के रूप में कुछ धन दिया जाय।

मुस्लिम-विवाह की कतियय शर्तें (Conditions of Muslim Marriage):-

मुस्लिम विवाह की कतियय शर्तों को हम इस प्रकार बता सकते हैं -

(१) प्रत्येक मुसलमान जो बालिग (१५ वर्ष की आयु का) हो, पागल न हो और सही मस्तिष्क का हो, निकाह कर सकता है।

(२) विवाह की स्वीकृति दोनों पक्षों की स्वतंत्र इच्छा से होनी चाहिए न कि धोखे या जबरदस्ती से।

(३) विवाह की स्वीकृति के अवसर पर गवाह के रूप में दो पुरुष अथवा एक पुरुष और दो स्त्रियों का होना जरूरी है।

(४) एक मुसलमान पुरुष एक समय में चार स्त्रियों तक विवाह कर सकता है, किन्तु मुस्लिम स्त्री एक समय में एक ही पुरुष से विवाह कर सकती है।

(५) तीर्थयात्रा के समय वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं किये जा सकते हैं।

(६) विवाह की स्वीकृति काज़ी के सम्मुख होनी चाहिए।

(७) जो स्त्री ''इद्दत की अवधि'' (चार मासिक धर्मों के बीच के तीन माह की अवधि) में हो, उसके साथ विवाह अनियमित है।

(८) विवाह की एक आवश्यक शर्त ''मेहर'' अर्थात् स्त्री-धन है जो विवाह के समय पुरुष द्वारा स्त्री को चुका दिया जाना चाहिए या तय कर लिया जाना चाहिए।

(९) विवाह में किसी भी प्रकार की बाधाएँ नहीं होनी चाहिए। ये बाधाएँ

दो प्रकार की होती हैं - एक वे जिनसे विवाह शून्य या बातिल (void) हो जाता है, अर्थात् ऐसे विवाह को माना नहीं जाता है और दूसरी वे बाधाएँ जिन से विवाह अनियमित या फासिद (Irregular) माना जाता है और इन बाधाओं को दूर करने पर विवाह पुनः मान्य हो जाता है।

(१०) निम्नांकित अवस्थाओं में विवाह समाप्त हो जाता है-

(क) कोई स्त्री एक समय में एकाधिक पति से विवाह कर ले, अर्थात् बहुपति विवाह होने पर दुसरा विवाह शून्य हो जाता है, किन्तु प्रथम विवाह मान्य बना रहता है।

(ख) निकट संबंधियों जैसे माता, दादी, नानी, सास, पुत्री, सगी बहन, चाची, मामी आदि से विवाह करने पर वह विवाह शून्य हो जाता है किन्तु व्यक्ति चचेरी (ममेरी, फुफेरी) बहिन से विवाह कर सकता है।

(ग) मूर्ति-पूजकों से विवाह भी शून्य माना जाता है।

(घ) पागल या अल्पवयस्क द्वारा बिना संरक्षकों की स्वीकृति के दिया गया विवाह भी शून्य माना जाता है।

(११) निम्नलिखित परिस्थितियों में विवाह अनियमित हो जाता है।

(क) पाँचवीं पत्नी से विवाह- जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया गया है मुस्लिम विवाह में एक समय में एक पुरुष चार स्त्रियों तक से विवाह कर सकता है। यदि कोई पाँचवी स्त्री को विवाह करता है तो उस विवाह को अनियमित विवाह करार दिया जाता है, परंतु ऐसी स्थिति में किसी एक स्त्री को तलाक देकर वह विवाह नियमित किया जा सकता है। ज्होन गुण्टर ने लिखा है कि साउदी अरब के संस्थापक इब्बन सौद्दी ने १२० स्त्रियों से विवाह किया था। यात्रा पर चलने से पूर्व वह किसी एक स्त्री को तलाक दे देता था।

(ख) साक्षियों का अभाव - यह भी पहले बताया गया है कि विवाह के समय दो पुरुष या एक पुरुष और दो स्त्रियों का बतौर गवाह उपस्थित रहना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं हुआ हो तो भी विवाह अनियमित हो जाता है।

(ग) विधर्मियों से विवाह शिया कानून के अनुसार वर एवं वधू दोनों

मुसलमान होने चाहिए। विधर्मी होने पर विवाह अनियमित हो जाता है। किन्तु अस्थायी विवाह जिसे "मुताह" कहते है, एक किताविया अर्थात् जो धर्म किसी किताब पर आधारित हो जैसे ईश्वरीयग्रंथ तौरते और इन्जील को मानने वाले यहूदी एवं ईसाई तथा अग्निपूजक पारसीओं के साथ भी हो सकता है।[६५]

मुस्लिम विवाह में महेर या स्त्री-धन (Dower in Muslim Marriage) : -

विवाह के परिणाम स्वरूप मुस्लिम स्त्री को "महेर" का अधिकार प्राप्त होता है। "महेर" वह धन या संमपति है जो पति पत्नी के सम्मान में देता है। इस पर कन्या के पिता का नहीं वरन् कन्या का ही अधिकार होता है। मेहर के कारण ही पुरुष को स्त्री से सहवास करने का आधिकार प्राप्त होता है। यह एक ऐसा अधिकार है जिससे पुरुषों की स्वेच्छाचारिता तथा तलाक देने के अधिकार पर कुछ नियंत्रण रहता है। "महेर" चार प्रकार का होता है।

(१) निश्चित महेर :-

यह वह महेर है जो विवाह के समय या विवाह के पूर्व पति द्वारा पत्नी को दिया जाता है। यह रकम पाँच रुपये से लेकर हज़ारों रुपयो तक की हो सकती है।

(२) उचित महेर :-

यदि विवाह के समय मेहर तय न हुआ हो तो अदालत बादमें भी लड़के के पिता की आर्थिक स्थिति को देखकर महेर तय करती है। उस समय अदालत यह भी ध्यान रखती है कि पत्नी की अन्य बहनों को क्या महेर मिला है। यह स्थिति तलाक के समय या पत्नी द्वारा मेहर की मांग की जाने

पर उत्पन्न होती है ।

(३) सत्वर महेर :-

यह वह मेहर है जो विवाह से पूर्व या सहवास से पूर्व पति को चुकाना पड़ता है ।

(४) स्थगित महेर :-

यह मेहर विवाह के समय तय तो हो जाती है किन्तु तलाक होने अथवा किसी पक्ष के मरने के अवसर पर दिया जाता है । दोनों पक्ष मिलकर यह भी तय कर सकते हैं कि कितना महेर सत्वर है और कितना स्थगित ।[६६]

मुस्लिम विवाह के भेद Forms of Muslim Marriage) :-

मुसलमानों में तीन प्रकार के विवाह होते हैं -

(१) सही या वैध विवाह (Permanent Marriage) :-

यह वह विवाह है जिसमें विवाह की सभी शर्तों का पालन किया जाता है । यह स्थायी प्रकृति का होता है और मुस्लिम रीति-रिवाजों के अनुसार होता है । इसे निकाह कहते हैं ।

(२) मुताह विवाह (Temporary Marriage) :-

सुन्नियों में केवल स्थायी विवाह ही हो सकता है किन्तु शिया मुसलमानों में अस्थायी विवाह जिसे मुताह कहते हैं वह भी हो सकता है । ऐसे विवाह की दो आवश्यक शर्तें है - सहवास का काल एवं महेर, इसमें पति-पत्नी सहवास का समय निश्चित करते हैं कि वे अमुक समय तक पति-पत्नी रहेंगे । यह समय एक दिन, एक माह, एक वर्ष भी हो सकता है ।

अवधि समाप्त होने पर ऐसा विवाह स्वतः ही समाप्त हो जाता है। यदि पति-पत्नी चाहें तो इसे स्थायी विवाह में भी बदल सकते है। इस विवाह की दुसरी आवश्यक शर्त महेर की का निश्चित उल्लेख होता है। यदि महेर निश्चित है और सहवास की अवधि अनिश्चित है तो ऐसा विवाह अवैध माना जायेगा किन्तु महेर निश्चित न होने पर विवाह को अवैध नहीं ठहरा सकते। ऐसे विवाह से उत्पन्न बच्चे वैध माने जाते है और उन्हें माता-पिता की सम्पति पर अधिकार होता है। किन्तु पत्नी को पति की सम्पति में अधिकार प्राप्त नहीं होत और न ही उसे पति से भरण-पोषण का अधिकार मिलता है। इस प्रकार के विवाहों का प्रचलन भारतीय मुसलमानों में नहीं है।

(३) अनियमित विवाह (Irregular Marriage) :-

इस प्रकार के विवाह में कुछ बाधाएँ होती है, जिन्हें दूर करने पर विवाह पुनः नियमित हो जाता है उदाहरण के तौर पर पाँचवी पत्नी व मूर्तिपूजक स्त्री से विवाह करने या विवाह में गवाहों की उपस्थिति न हो तो यह विवाह अनियमित हो जाता है। इसे नियमित बनाने के लिए पाँच में से किसी एक स्त्री को तलाक दे दिया जाय, धर्म परिवर्तन कर अमुस्लिम स्त्री को मुस्लिम बनाया जाय और विवाह के लिए गवाहों को जुटाया जाय।[६७]

मुसलमानों में विवाह-विच्छेद अर्थात् तलाक (Divorce among Muslims) :-

मुस्लिम विवाह एक समझौता है, अतः दोनों पक्षों में से कोई भी पक्ष जब इस समझौते का पालन नहीं करता है तो तलाक द्वारा विवाह-विच्छेद किया जा सकता है। प्राचीन अरबों में ''खोल'' की प्रथा थी, जिसके अनुसार पिता अपनी पुत्री को कभी भी उसके पति के बंधन से मुक्त करा सकता था। ऐसा करने पर उसे ''सदक'' अर्थात् वधू-मूल्य लौटाना पड़ता था। आगे चलकर ''सदक'' ने ही ''महेर'' का रूप ले लिया।

मुसलमानों में सात प्रकार के तलाक :-

(१) तलाक (२) इला (३) जिहर (४) खुला (५) मुबारत (६) लियान और (७) तलाके-तफबीज। यहाँ बहुत संक्षेप में उन पर विचार करने का हमारा उपक्रम है।

(१) तलाक :-

मुस्लिम कानून के अनुसार कोई भी पुरुष जो बालिग और स्वस्थ मस्तिष्क वाला होता है, बिना कारण बताये अपनी स्त्री को तलाक दे सकता है। नशे की हालत में तथा पत्नी की अनुपस्थिति में भी तलाक शब्द के उच्चारण मात्र से ही तलाक हो जाता है। इसे मौखिक तलाक कहते है। यह भी तीन प्रकार के होते है -

(क) तलाके अहसन (Talake- e-Ahasan) :-

इसमें पति-पत्नी के मासिक धर्म के समय पर एक बार तलाक की घोषणा करता है और उसके बाद ''इद्दत'' की अवधि में पत्नी से यौन संबंध स्थापित नहीं करता है। ''इद्दत'' चार मासिक धर्मों के बीच तीन महीने की अवधि को कहते है। इस अवधि तक यदि पति-पत्नी के साथ सहवास नहीं करता है तो अवधि की समाप्ति पर तलाक अपने आप हो जाता है। ''इद्दत'' की अवधि के पालन का मुख्य उदेश्य यह मालूम करना है कि स्त्री कहीं गर्भवती तो नहीं है। इसके अलावा इस अवधि में अपने किए गए निर्णय पर पुनविचार के लिए पति को पर्याप्त समय मिल जाता है जिसमें वह शांत चित से सोचते हुए अपना निर्णय बदल भी सकता है।

(ख) तलाके-हसन (Talake-e-Hasan) :-

इसमें पति तीन मासिक धर्मों की बीच के समय में तीन बार

तलाक शब्द कहता है और इस बीच में वह अपनी पत्नी से सहवास भी नहीं करता है। इस अवधि की समाप्ति के बाद तलाक मान लिया जाता है।

(ग) तलाक-उल-बिद्दत (Talak-ul-Biddat) :-

इसमें पति किसी भी मासिक धर्म के अवसर पर थोड़े-थोड़े समय के बाद "तलाक" शब्द की तीन बार घोषणा करता है और उसके उपरांत इद्दत की अवधि के समाप्त होने पर तलाक मान लिया जाता है।

(२) इला (Illa or vow of contnence) :-

इसमें पति खुदा की कसम खाकर यह घोषणा करता है कि वह चार माह या अधिक समय तक पत्नी के साथ सहवास नहीं करेगा। इस अवधि तक यदि वह सहवास नहीं करता है तो विवाह विच्छेद हो जाता है।

(३) जिहर (Zihar) :-

जब पति अपनी पत्नी की तुलना किसी ऐसे संबंधी से करे जिनसे विवाह निषेध होता है, जैसे वह कहे कि तुम तो मेरी मां या बहिन के समान हो, तो पत्नी पति को प्रायश्चित के लिए कहती है। यदि पति ऐसा नहीं करता है तो पत्नी अदालत से तलाक की मांग कर सकती है और अदालत ऐसी स्थिति में तलाक स्वीकार कर देती है।

(४) खुला (Khula) :-

इसमें पत्नी अपने पति से कहती है कि अगर वह उसे शादी से मुक्त करे दे तो वह उसे महेर वापस लौटाकर उसकी क्षतिपूर्ति कर देगी। इस मामले में यदि दोनों की सहमति हो जाती है तो तलाक हो जाता है।

(५) मुबारत (Mubarat) :-

यह विवाह विच्छेद भी दोनों की पारस्परिक सहमति से होता है।

किन्तु इसमें खुला की तरह पत्नी पति को कोई धन देती नहीं है। इस प्रकार के तलाक में पत्नी इद्दत की अवधि के दौरान पति के पास ही रहती है।

(६) लियान (Lian) :-

इसमें पति पत्नी पर व्यभिचार का आरोप लगाता है और पत्नी इसका खंड़न करती है और अदालत से प्रार्थना करती है कि या तो पति अपने आरोप को वापस ले या खुदा को हाज़िर-नाजिर सझकर घोषणा करे कि यह आरोप सत्य है। यदि पति का आरोप झूठा साबित होता है तो पत्नी को विवाह विच्छेद का अधिकार मिल जाता है और यदि पति अपना आरोप वापस ले लेता है तो मुकदमा अपने आप खारिज़ हो जाता है।

(७) तलाके - तफबीज (Talake- e- Thafabeej) :-

इसमें पत्नी तलाक की मांग करती है जो उसे विवाह के समय पति द्वारा दिये गये अधिकारों के आधार पर प्राप्त होता है।[६८]

इस प्रकार हम देख सकते हैं मुस्लिम तलाक कानून के मुताबिक पति अपनी पत्नी को जब चाहे छोड़ सकता है। उसके लिए इतना ही काफी है कि वह पत्नी से चार महीने तक सहवास न करें। मुसलमानों में तलाक अदालत एवं बिना अदालत की सहायता से तथा लिखित और मौखिक दोनों तरीको से हो सकता है। लिखित में तलाक देने को तलाकनामा कहा जाता है। परंतु उपयुक्त सभी प्रकार के तलाकों को देखने पर ज्ञात होता है कि इसमें स्त्री की तुलना में पुरुष को ही तलाक देने की अधिक स्वतंत्रता है।

तलाक विषयक कुछ अधिनियम :-

शरीयत अधिनियम १९३७ (Shariat Act, 1933) ने मुस्लिम स्त्री को पति के नपुंसक होने और उसके द्वारा पत्नी पर झूठा व्यभिचार का दोषारोपण करने की स्थिति में तलाक का अधिकार प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त

''इला'' एवं ''जिहर'' के आधार पर पर भी तलाक दिया जा सकता है।

मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम १९३९ (Dissolntion of Muslim Marriage Act 1939) :-

इस अधिनियम के अनुसार मुस्लिम स्त्री को निम्नलिखित आधारों पर अपने पति को तलाक देने का अधिकार प्राप्त होता है :-

(१) यदि चार वर्ष से पति का कोई पता न हो।

(२) यदि पति दो वर्ष से पत्नी का भरण-पोषण करने में असमर्थ हो।

(३) यदि पति को सात या अधिक वर्षों के लिए जेल की सजा हुई हो

(४) यदि पति तीन वर्ष से बिना किसी कारण के अपने वैवैहिक कर्तव्यों को निभाने में असमर्थ रहा हो।

(५) यदि पति नपुंसक हो।

(६) यदि पति पागल हो।

(७) यदि पति संक्रामक यौन-रोग एवं कोढ़ से ग्रस्त हो।

(८) यदि उसका विवाह १५ वर्ष से कम की आयु में उसके पिता या अन्य संरक्षकों द्वारा कर दिया गया हो और इस अवधि में पति-पत्नी में यौन- संबंध स्थापित न हुए हों और लड़के की १८ वर्ष की आयु होने के पहले ही विवाह के विरुद्ध प्रतिवेदन कर दिया गया हो।

(९) यदि पति पत्नी के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता हो।

(१०) यदि पति चरित्रहीन स्त्रियों से संपर्क रखता हो।

(११) यदि पत्नी को व्यभिचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने को बाध्य करता है।

(१२) यदि पति पत्नी की संपत्ति को बेचता हो या उसके सम्पति संबंधी अधिकारों में बाधा डालता हो।

(१३) यदि पत्नी के धार्मिक कार्यों में बाधा डालता हो।

(१४) एक से अधिक पत्नियाँ होने पर पति उसके साथ समान व्यवहार न करता हो।

(१५) किसी अन्य आधार पर जो मुस्लिम कानून के अनुसार तलाक के लिए मान्य हो।[६९]

सम्प्रति अप्रैल २९,३० एवं मई को भोपाल में AIMPLB (All-Inida Muslim personal Low Board) का एक तीन दिन का अधिवेशन हुआ जिसमें बोर्ड के सेक्रेटरी अब्दुल-उर-रहीम कुरेशी साहब ने मुस्लिम विवाह तथा तलाक के संदर्भ में कुछ बातों पर प्रकाश डाला था जिसे भी एक नज़र देख लेना समुचित ही कहा जायेगा -

In case of a total breakdown of a Marriage, there is provision for divorce in Islamic Laws, Islam does not believe that one has to live through a bad Marriage. But "Talak" is also the Most detestable concept in the eyes of Allah. So, unless it be comes absolutely inevitable. The man should not divorce his wife. And when he sincerely feels that the Marriage can not continue, then we suggest he should pronounce "Talak" Just once and not thrice (Because) After pronouncing "Talak" one time there is a three Month Period Called "iddat" whereby he can contemplate on the graver repercussions of the divorce. Élders of the family can intervene to sort out the differences and the divorce can be revoked.[70]

उपर्युक्त कथन से यह प्रमाणित हो रहा है कि अब शिक्षित एवं समझदार मुसलमानों में भी तलाक-विषयक पुनविचार की प्रक्रिया शुरु हो गई है।

मुस्लिम परिवार की विशेषाएँ (Characteristics Of Muslim Family) :-

मुस्लिम समाज, उसकी सभ्यता और संस्कृति को समझने के लिए मुस्लिम परिवार की विशेषताओं को जान लेना आवश्यक होता है । यहाँ बहुत संक्षेप में मुस्लिम परिवार की कतिपय विशेषताओं को उजागर करने का यत्न किया गया है ।

(१) संयुक्त परिवार (Joint Family :-

हिन्दुओं की भांति मुसलमानों में भी संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन है । उनके धर्मग्रंथ कुरान में ऐसे परिवारों को श्रेष्ठ माना गया है । इस्लाम में वयोवृद्ध पुरुषों और स्त्रियों अर्थात् बुजुर्गों को सम्माननीय माना गया है । अतः संयुक्त परिवार के सभी सदस्य परिवार के मुखिया के आदेशों का पालन करते हैं । इस्लाम में एक पुरुष को चार पत्नियाँ रखने की छूट दी गई है । अतः स्वाभाविक रूप से परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ जाती है । हालाँकि चार पत्नी करनेवाले पुरुष अपवाद रूप ही होते है । मुस्लिम परिवार में पति-पत्नी उनके बच्चे तथा बच्चों की पत्नियों के अतिरिक्त स्त्री पक्ष के संबंधी और अन्य रिश्तेदार भी होते हैं, इस कारण परिवार के आकार में वृद्धि हो जाती है । मुस्लिम संयुक्त परिवार के सदस्यों का निवास, सम्पति, आय और रसोई सामूहिक होती है । किन्तु ऋणों का भुगतान व्यक्तिगत रूप से किया जाता है । शहरों की अपेक्षा ग्रामीण मुसलमानों में संयुक्त परिवारों की बहुलता है । संयुक्त के साथ-साथ मुसलमानों में एकाकी परिवार भी पाये जाते हैं । औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं आधुनिक प्रभावों के कारण अब मुसलमानों में भी एकाकी परिवार या विभक्त परिवार की संख्या बढ़ रही है । शहरों में इसकी संख्या ज्यादा है ।

(२) पुरुष-प्रधान परिवार :-

मुस्लिम परिवार पुरुष-प्रधान है उसकी पुष्टि कई तरह से हो सकती है। उदाहरणतया मुस्लिम परिवार पितृसत्ताक और पितृवंशीय है। पुत्र वंशनाम पिता से ही ग्रहण करता है और विवाह के बाद स्त्री पति के पिता के निवास स्थान पर ही रहती है। संपत्ति में भी स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक अधिकार है। पुरुष ही परिवार का मुखिया होता है और पारिवारिक अधिकारों का अधिक हक़दार होता है। वही परिवार के अनाथ, अपंग, परित्यक्त एवं विधवा स्त्रियों आदि के भरण-पोषण की व्यवस्था करता है। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध भी वही करता है। विवाह विच्छेद में भी स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक अधिकार प्राप्त है।

(३) सदस्यों की पारिवारिक स्थिति में असमानता (Disparity in the status of Family Members) :-

हालाँकि धर्म समानता का पक्षपाती है, मुस्लिम परिवार में सभी सदस्यों को समान अधिकार प्राप्त नहीं होतें है। परिवार के सदस्यों के अधिकारों में आयु, लिंग इत्यादि का विचार किया जाता है। बड़ी आयुवालों को अपेक्षाकृत अधिक आदर एवं अधिकार प्राप्त होते हैं। इसी तरह पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को कम आदर और अधिकार मिलते हैं। पुरुष ही संपत्ति के उतराधिकारी होते है, विवाह विच्छेद में भी उनको ही विशेषाधिकार प्राप्त है और वे ही परिवार के मुखिया का पद धारण करते हैं। परिवार के महत्त्वपूर्ण मामलों में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की राय ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। परिवार में पिता के बाद माँ और पति के बाद पत्नी का स्थान माना जाता ह। लड़को में भी सबसे वड़े लड़के का स्थान ऊँचा माना जाता है।

(४) बहुपत्नी प्रथा (Polygynous System) :-

इस्लाम में बहु-पत्नीत्व को स्वीकार किया गया है। उसमें एक पुरुष चाहे तो चार पत्नियों तक रख सकता है। अरब समाज में एकाधिक पत्नियाँ रखना सम्मान और प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है। हिन्दुओं में भी मध्यकालीन सामंतीय वातावरण में एकाधिक पत्नियों को रखना प्रतिष्ठासूचक होता था। अतः मुसलमानों के संपन्न परिवार में बहुपत्नीत्व की प्रवृत्ति पाई जाती है। परिवार में एकाधिक स्त्रियाँ रहने पर पुरुष से यह अपेक्षा रखी जाती है कि वह सभी पत्नियों के साथ समान व्यवहार करे। एक ध्यान देने लायक तथ्य यह है कि मुस्लिम परिवार में एकाधिक पत्नियाँ होने पर भी उनमें द्वेष या कलह की स्थिति कम ही दिखाई देती है, उसका कारण शायद यही है कि वे बचपन से ही मानसिक रूप से इसके लिए तैयार होती हैं, दूसरे ''तलाक'' की तलवार भी उनके सिर पर सदा मंडरायी हुई रहती है। मुस्लिम परिवार का समाजीकरण ही ऐसा होता है कि अन्य स्त्रियों के साथ वे अनुकुलन कर लेती है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ अब मुसलमानों में बहुपत्नीत्व को अनुचित माना जाने लगा है और शिक्षित मुस्लिम परिवार का झुकाव अब एक विवाही परिवार की ओर बढ़ रहा है।

(५) पर्दा-प्रथा (Purdah System) :-

मुसलमानों में स्त्रियों को पुरुषों से अलग रखने के लिए पर्दा-प्रथा का प्रचलन है। घर में दरवाजों और खिड़कियों में पर्दे और चिक लगे होते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों से खुले मुँह बात नहीं करती हैं। घर से बाहर आने-जाने पर स्त्रियाँ घूँघट और बुर्के का प्रयोग करती हैं। घर में भी स्त्रियों और पुरुषों के लिए क्रमशः ''जनान खाना'' और ''मर्दान खाना'' की व्यवस्था होती है। मोहम्मद साहब स्त्रियों को सार्वजनिक स्थानों पर आने-जाने तथा सामाजिक व्यवहार में स्वतंत्रता देने के पक्षपाती नहीं थे। उन्होंने अपने

अनुयायिओं को कहा था- ''धर्म में विश्वास करने वाली स्त्रियों से कहो कि वे इधर-उधर दृष्टिपात न करें और संयम से काम ले तथा वे अपने-भाषणों का आवश्यकता से अधिक प्रदर्शन न करें।''[७१] चिकित्सा के समय तथा अदालत में साक्षी देते समय पर्दा न करने की छूट दी गई है।

(६) परिवार का धार्मिक आधार (Religious Basis of Family) :-

मुस्लिम समाज और परिवार धार्मिक आधारों को केन्द्र में रखकर चलता है। कुरान उनका धर्मग्रंथ है और प्रायः मुस्लिम परिवार उसमें दिये गये आदेशों से अनुशासित रहता है। उनको शुरू से ही यह सिखाया जाता है कि कुरान के आदेशों का पालन करनेवाला व्यक्ति खुदा को प्यारा होता है और जो खुदा के आदेशों का पालन नहीं करते खुदा उनको दण्ड देता है। कुरान में प्रकट किए इस प्रकार के विचार परिवार के सदस्यों को पारस्परिक कर्तव्यों एवं दायित्वों के निर्वाह की प्रेरणा देते हैं, उनके संबंधों को निर्धारित एवं नियन्त्रित करते है तथा पारिवारिक दृढ़ता को बनाए रखने में सहायक होते है। कुरान में परिवार के लोगो के लिए नमाज़ पढ़ने, रोजा रखने हज्ज करने तथा दान देने के भी आदेश मिलते हैं। इस प्रकार मुस्लिम परिवार में धर्म की प्रधानता पाई जाती है। इसका एक कारण यह भी है कि हिन्दुओं की तरह उनके यहाँ अनेक धार्मिकग्रंथो की बात नहीं है जो भी कहता है कुरान के आदेशों के अनुसार ही कहता है।

(७) परिवार में स्त्रियों की निम्न स्थिति (Low Status Of Women In The Family) :-

यदि हम सैद्धांतिक दृष्टि से देखें तो मुस्लिम स्त्री को हिन्दू स्त्रियों की तुलना में अधिक अधिकार प्राप्त हैं। पारिवारिक संपत्ति में भी मुस्लिम स्त्रियों का अधिकार होता है और वे अपने हिस्से का प्रयोग चाहे

जैसे कर सकती हैं। "महेर" की रकम पर भी स्त्री का अधिकार है। मुस्लिम स्त्रियों को धार्मिक अधिकार भी प्रदान किए गए हैं। वह कुरान पढ़ सकती है, रोजे रख सकती है, विवाह में भी स्त्री की स्वीकृति को अनुमति दी गई है। किन्तु व्यवहारतः देखा जाए तो पर्दा-प्रथा, अशिक्षा एवं संयुक्त परिवार उनकी प्रगति में बाधक सिद्ध होते है। उनका जीवन "जनानखाने" तक ही सीमित है। परिवार में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। वर्तमान समय में शिक्षा की वृद्धि के साथ-साथ स्त्रियों की स्थिति में कुछ सुधार आ रहा है।

(८) परंपराओं की प्रधानता (Prominence of Traditions) :-

मुस्लिम समाज परंपरावादी है। यह परंपराएँ पुत्र पिता तथा परिवार से प्राप्त करता है। इन परंपराओं में पारिवारिक, वैवाहिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ होती है जो पुश्त-दर-पुश्त रूपांतरित होती रहती हैं। इसके कारण उनमें एक सांस्कृतिक निरंतरता (Continnety) भी बनी रहती है। अपनी भाषा, रीति-रिवाज, खान-पान, जीवन पद्धति आदि जो इन्हें अपने पूर्वजो से प्राप्त हुई हैं, उनको बनाए रखने में वे अपना गौरव समझते हैं।

(९) संस्कारों की प्रधानता (Prominence of Rites) :-

परंपरावादी होने के कारण मुस्लिम समाज में संस्कारों की भी प्रधानता पाई जाती है। मुस्लिम समाज में अनेक धार्मिक संस्कार संपन्न होते है, जैसे सतवाँ, अकीका, चिल्ला, बिसमिल्ला, खतना, निकाह, मैयत आदि। हिन्दुओं में सोलह संस्कारों की बात मिलती हैं परंतु वर्ण-व्यवस्था के कारण वहाँ भी भेद की दीवारें सामाजिक एकता में बाधक होती हैं। मुस्लिम समाज में ये भेद कम से कम पाए जाते हैं। मुस्लिम समाज को

समझने के लिए उनमें प्राप्त इन संस्कारों को समझना आवश्यक होगा। उसके बिना मुस्लिम समाज-विषयक हमारा ज्ञान अधूरा ही समझा जायेगा।

सतवाँ :-

स्त्री के गर्भ धारण करने के सातवें महीने में ''सतवाँ'' नामक संस्कार किया जाता है। इस अवसर पर अपने इष्ट मित्रों एवं नातिदारों को आमंत्रित कर दावत दी जाती है और नाचने-गाने के कार्यक्रम भी होते हैं। हिन्दुओं में भी यह विधि होती है। गुजरात में उसे ''सीमन्त'' कहते हैं।

अकीका :-

यह संस्कार पुत्र के पैदा होने पर सातवीं रात को मनाया जाता है। मुल्ला इसी दिन बच्चे का नामकरण संस्कार करता है। इस अवसर पर नमाज़ पढ़ी जाती है, और फकीरों को दान दिया जाता है। हिन्दुओं में ''छठी'' का संस्कार होता है और ऐसा माना जाता है कि विधाता उसी दिन बालक के विधि-लेख लिखता है। बच्चे को सर्वप्रथम काजल लगायी जाती है और जच्चा-गीत गाये जाते हैं।

चिल्ला :-

यह संस्कार संतान पैदा होने के चालीसवें दिन संपन्न किया जाता है। इस दिन बच्चे की मां को स्नान करवा कर उसे नये वस्त्र पहनाये जाते हैं। रिश्तेदारों द्वारा इस अवसर पर उपहार भी दिये जाते हैं। नमाज़ पढ़ी जाती है और अल्लाह से दुआ मांगी जाती है तथा खैरात बांटी जाती है।

बिसमिल्ला :-

इस संस्कार का संबंध विद्यारंभ से है। उस दिन मुल्ला बच्चे को बिसमिल्ला शब्द का उच्चारण करवाता है और पाटी पर लिखवाता है।

हिन्दूओं में भी यह संस्कार होता है, उसे ''पाटी पूजन'' कहा जाता है।

खतना :-

बच्चा जब पाँच-सात साल का हो जाता है तब उसका खतना करवाया जाता है। इसे ''सुन्नत'' भी कहते हैं। इसमें नाई लड़के के लिंग की आगे की चमड़ी को काट देता है। इस संस्कार के बाद बच्चा धार्मिक कार्मों में भाग लेने लगता है। इस अवसर पर बच्चा कुछ शपथे भी लेता है और कुरान की आयते पढ़ता है। बच्चे को इस अवसर पर उपहार दिये जाते है और सगे संबंधियों के लिए भोज का कार्यक्रम भी आयोजित होता है। इस संस्कार के संपन्न होने के पश्चात् मुसलमान लड़का नमाज़ पढ़ने और रोजे रखने की शुरुआत कर देता है। उसके बाद वह सच्चा मुसलमान माना जाता है। हिन्दूओं में इसे ''यज्ञोपवित'' या ''जनेऊ'' का संस्कार कहते हैं, परंतु वह कुछ वर्णों तक सीमित है और सभी के लिए यह संस्कार नहीं है, अर्थात् भेदभाव की दीवार यहाँ भी है। परंतु मुसलमानों में यह भेद नहीं है। यह संस्कार प्रत्येक मुसलमान बच्चे के लिए है।

निकाह :-

निकाह का अर्थ है विवाह। पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि मुसलमानों में निकाह या विवाह एक प्रकार का सामाजिक-पारिवारिक समझौता (करार-अनुबंध-Contract) होता है। अन्यत्र उस पर विस्तार से कहा गया है।

मैयत :-

यह मुस्लिम समाज का अंतिम संस्कार है। मरने पर नाई व्यक्ति की हजामत बनाता है, उसे स्नान कराता है और उसे नये वस्त्र पहनाए जाते है। चादर ओढ़ाकर मृत व्यक्ति को मस्जिद में ले जाया जाता है। वहाँ मृतात्मा

की शांति के लिए नमाज पढ़ी जाती है । फिर मुर्दे को लोग शांति से ले जाकर कब्र में दफना देते हैं । कब्र पर फातिहा पढ़ा जाता है । इसके बाद मृत व्यक्ति का तीजा, दसवाँ, चालीसवाँ, एवं बरसी आदि मृत्यु से सम्बद्ध संस्कार किए जाते हैं । इन अवसरों पर फकीरों एवं गरीबों को भोजन कराया जाता है । ये सभी संस्कार सभी मुसलमान परिवारों द्वारा संपन्न किये जाते हैं ।[७२]

निष्कर्ष :-

अध्याय के समग्रावलोकन से हम सहजतया निम्नलिखीत निष्कर्षों तक पहुँच सकते है ।

१. यूरोपीय प्रजा व्यापार तथा ईसाइयत के प्रचार हेतु भारत की ओर प्रवृत हुई थी ।

२. सन् १४९८ में वास्को-डी-गामाने भारत आने के समुद्री रास्ते की खोज की । प्रारंभ में फिरंगी, फ्रेन्च और अंग्रेजों के बीच भारत में संघर्ष होते रहे, अंततः अंग्रेज उसमें सफल हुए ।

३. सन् १७५७ से सन् १८५७ तक के सौ वर्ष में अंग्रेजों ने कुल लगभग १११ छोटी-मोटी लड़ाइयाँ लड़ी और अंततः भारत पर सत्ता स्थापित करने में वे सफल रहे ।

४. अंग्रेज व्यापारियों के साथ-साथ मिशनरी धर्म प्रचारक भी आये और उन्होंने ईसाइयत के प्रचार-प्रसार हेतु कोई कसर नहीं रखी । इस हेतु उन्होंने हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का अध्ययन भी किया ।

५. संसार के सभी धर्मों में तीन धर्म अति प्राचीन है- हिन्दु धर्म, जरथ्रुस्त धर्म और यहूदी धर्म । इनमें से प्रथम दो धर्म आर्यों के बीच उत्पन्न हुए और तीसरा धर्म सामी जाति के बीच से जनमा । ईसाइयत और इस्लाम दोनों का संबंध यहूदी धर्म से है ।

६. सामी जाति घनघोर मूर्तिपूजक थी । मूर्तिपूजा को त्यागने का प्रथम

उपदेश हजरत इब्राहीम ने दिया जिनको यहूदी परंपरा में आदि पैगम्बर माना जाता है ।

७. ईसाई धर्म के प्रवर्तक इजरत ईसा हैं । ईसाई धर्म का धर्मग्रंथ बाइबिल है । जिनके दो भाग है - पुरानी बाइबिल (Old Testament) और नयी बाइबिल New Testament) । पुरानी बाइबिल हजरत दाऊद और मूसा द्वारा कही गयी है, जबकि नयी बाइबिल हजरत ईसा द्वारा । इन दोनों के बीच जो संबंध है वह बहुत कुछ वेद और उपनिषदों जैसा है । यहूदी लोग नयी बाइबिल में नही मानते, ठीक उसी तरह ईसाइयों का विश्वास पुरानी बाइबिल में नहीं है ।

८. बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म में बहुत कुछ समानता है । जिस प्रकार बौद्ध धर्म वैदिक धर्म की कर्मकाण्ड़ीय जटिलता के विरोध में आया, ठीक उसी तरह ईसाई धर्म यहूदी धर्म के विरोध में आया है ।

९. ईसाई धर्म मूलतः दो भागों में विभक्त है - कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेण्ट, किन्तु दोनों की आत्मा अविभक्त है । ईसाई धर्म अपने अनुयायिओं को दस आदेशों का पालन करने का निर्देश देती है जो दया, प्रेम, करुणा, समानता तथा भाई-चारे के सिद्धांतों पर आधारित है ।

१०. ईसाई धर्म की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है - एकेश्वरवाद, ईसा मसीह में विश्वास, आत्मा की पवित्रता, त्रियकवाद, चर्च की सत्ता, पाँच धार्मिक अनुष्ठानों में विश्वास, मूर्तिपूजा का विरोध तथा समानता तथा भातृत्व ।

११. भारत में प्रायः चार प्रकार के ईसाई परिवार पाए जाते हैं । (अ) वे जो यूरोप-निवासियों की भारत में बसी हुई संतानों से बने है । (ब) वे जो हिन्दुओं तथा मुसलमानों से धर्म-परिवर्तन द्वारा बने ईसाइयों अथवा उनकी संतानों से बने हैं । (क) वे या प्रथम और द्वितीय प्रकार के ईसाइयों की मिश्रित संतानों से बने है और (ड) वे जो एसे आदिवासीयों से बने है जो धर्म- परिवर्तन द्वारा ईसाई बन गये हैं ।

१२. पितृसत्तात्मक व्यवस्था, सम्मिलित आय का अभाव, सम्मिलित संपत्ति का अभाव, परिवार का लघु आकार वैयक्तिक आधार, समानता के सिद्धांत पर बल, अपेक्षाकृत स्त्रियों की बेहतर स्थिति आदि ईसाई-परिवार की कुछ विशेषताएँ है।

१३. ईसाइयों की विवाह-प्रथा अधिक जटिल नहीं है।

१४. यद्यपि ईसाई धर्म विवाह-विच्छेद की अनुमति नही देता, तथापि अन्य धर्मावलबियों की तुलना में उनमें विवाह-विच्छेद अधिक पाए जाते हैं।

१५. ईसाई विवाह-पद्धति में अनेक नये परिवर्तन आ रहे है। वस्तुतः उसमें लचीलापन अधिक है। ईसाई समाज की एक अच्छी बात यह है कि उसमें बाल-विवाह नहीं होते।

१६. भारत में मुस्लिमों की कुल संख्या ११ % है।

१७. मुस्लिम धर्म के स्थापक हजरत मुहम्मद पैगम्बर है।

१८. इस्लाम का मूल-मंत्र है - ''ला इलाह इल्ललल्लाह मुहम्मदर्र रसूलल्लाह''। अर्थात् अल्लाह के सिवा और कोई पूजनीय नहीं है तथा मुहम्मद उनके रसूल है।

१९. मुसलमानों का धार्मिक ग्रंथ कुरान है जिसमें प्रत्येक मुसलमान के लिए पाँच धार्मिक कृत्य निर्धारित किए है - (१) कलमा पढ़ना (२) नमाज पढ़ना (३) रोजा रखना (४) जकात (५) हज करना।

२०. इस्लाम के आरंभिक खलीफा वीर, उदार, न्यायी और विवेक संपन्न थे। परंतु भारत पर आक्रमण करनेवाले मुस्लमान दूसरे प्रकार के थे। वे अधिक कट्टर और धर्मान्ध थे।

२१. मुहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज चौहाण का पराजय होता है और यहीं से भारत में मुस्लिम समा का श्री गणेश होता है।

२२. गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश और लोदी वंश के लगभग सन् १२०६ से १५२६ तक के कालखंड को सल्तनत का समय कहा जाता है। सन् १५२६ से १८५७ तक का कालखंड मुगल समय कहा जाता

है। इसमें अकबर, जहाँगीर और शाहजहों के समय में मुस्लिम-संस्कृति का खूब विकास होता है। औरंगजेब के समय से उसमें ह्रास शुरू हो जाता है।

२३. मुस्लिम शासन के दौरान जो प्रभावशाली व्यक्तित्व हमारे सामने आते हैं उनमें अमीर खुसरो, निजामुद्दीन चिश्ती, कबीर, नानक, दादू, जायसी, चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई, तुलसीदास, संत तुकाराम, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविंदसिंह, राणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी आदि की गणना कर सकते है। इनके कारण हिन्दू-मुस्लिम समाज में समरसता स्थापित होती है और दोनों की मिली-जुली एक गंगा-जमुनी संस्कृति का निर्माण होता है।

२४. इस्लाम की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं - एकेश्वरवाद, पैगम्बरीय परंपरा, समानता और बिरादरी की भावना, मूर्तिपूजा का विरोध, पूर्वजन्म की अवधारणा में अविश्वास : पाँच धार्मिक कृत्य की अनिवार्यता- कलमा पढ़ना, नमाज पढ़ना, रोजा रखना, जकात और हज ईश्वर की अधीनता में विश्वास।

२५. मुस्लिम समाज की सभ्यता और संस्कृतिमें उनकी विवाह विषयक विभावना, विवाह-विच्छेद विषयक विभावना, मुस्लिम-विवाह की कतियम आवश्यक शर्तें, मुस्लिम विवाह में महेर या स्त्री-धन का महत्त्व, मुस्लिम विवाह के भेद, तलाक के भेद, तलाक-विषयक कुछ अधिनियम सविशेष महत्त्व है।

२६. मुस्लिम परिवार की विशेषताओं में संयुक्त परिवार पद्धति, पुरुष-प्रधान परिवार पद्धति, पारिवारिक स्थिति में असमानता, बहुपत्नीत्व प्रथा, पर्दा-प्रथा, परिवार में धार्मिक आधार की केन्द्रीयता, स्त्रियों की निम्न स्थिति, परंपराओं की प्रधानता, संस्कारों की प्रधानता आदि की गणना कर सकते हैं।

२७. मुस्लिम समाज में सतवाँ, अकीका, चिल्ला, बिसमिल्ला, खतना, निकाह और मैयत आदि सात संस्कारों का विशेष महत्त्व है।

*

संदर्भ-सूचि :-

१. संस्कृति के चार अध्याय, डॉ. दिनकर, पृ. ४८४

२. दृष्टव्य : वही, पृ.४८४

३. दृष्टव्य : वही, पृ.४८४

४. दृष्टव्य : वही, पृ.४८९

५. दृष्टव्य : वही, पृ.४८९

६. दृष्टव्य : कहानी विविधा, सं. देवीशंकर अवस्थी।

७. उद्धृत द्वारा : डॉ. दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ.४९०

८. दृष्टव्य : उपरीवत् , पृ.४९१-९२

९. दृष्टव्य : उपरिवत् , पृ.४९१

१०. संस्कृति के चार अध्याय, पृ.५२०

११. उद्धृत द्वारा, डॉ. दिनकर, उपरीवत् , पृ.५१९

१२. संस्कृति के चार अध्याय,पृ. ५१८

१३. उद्धृत द्वारा, डॉ. दिनकर, पृ.५२०-५२१

१४. विस्तार के लिए देखिए : भारतीय समाज तथा संस्कृति : डॉ. एम.एम. गुप्ता एवं डॉ. डी.डी. शर्मा, पृ. २६८-२८७

१५. चिंतनिका : पृ. १३

१६. विस्तार के लिए देखिए : भारतीय समाज तथा संस्कृति : डॉ. एम.एम. गुप्ता एवं डॉ. डी.डी. शर्मा, पृ. २६८-२८७

१७. विस्तार के लिए दृष्टव्य : उपरिवत् , पृ. २७७-२८०

१८. St. Mattheo : Chep XIX, p.5

१९. Ibid : P.9

२०. बिहारी का नय मूल्यांकन : सं.डॉ. बच्चनसिंह दो.सं. १८७

२१. '१७' के अनुसार : पृ. २७२-२७३

२२. सूखे सेमल के वृन्तों पर, पृ.६५

२३. '२१' के अनुसार : पृ. २७३-२७४

२४. रागदरबारी : पृ. २९५

२५. भारतीय समाज तथा संस्कृति : पृ. २७६

२६. See, year book-2003 : Edited by S.K. Sachdeva : com petition Review Pvt. Ltd.: 604, Parabhat kiran, Rajendra Place, New Delhi- 110008, p.272

२७. See, Ibid, p.553

२८. दृष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय, पृ.५१८

२९. दृष्टव्य : वही, पृ.२७७

३०. दृष्टव्य : वही, पृ.२८९

३१. See, The World History : By Lane Hold Man Hunt, p.168

३२. दृष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय, पृ.२७६

३३. वही, पृ.२७६-२७७

३४. वही, पृ.२७६

३५. वही, पृ.२७९

३६. वही, पृ.२७९

३७. दृष्टव्य : उपरिवत् , पृ.२७९-२८०

३८. वही, पृ.२८०

३९. दृष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय, पृ.२८१

४०. उद्धृत द्वारा : डॉ. दिनकर, वही, पृ.२७१

४१. वही, पृ.३२१

४२. वही, पृ.३२१

४३. वही, पृ.२८२

४४. जयचंद्र विद्यालंकार : उद्धृत द्वारा: डॉ. दिनकर : ग्रंथ-उपरिवत् : पृ.२८३

४५. वही, पृ.२८३-२८४

४६. वही, पृ.२८४

४७. वही, पृ.२८४

४८. दृष्टव्य : हिंदी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ. पारूकांत देसाई, पृ. १०

४९. See, your book 2003, p.562

५०. Ibid : p.562

५१. Ibid : p.562-563

५२. Ibid : p.563

५३. Ibid : p.567

५४. Ibid : p.568

५५. Ibid : p.569

५६. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्लः पृ.१०१

५७. भारतीय समाज तथा संस्कृति, पृ.२६४

५८. वही, पृ.२६४-२६५

५९. भारतीय समाज तथा संस्कृति, पृ.२४४-२४५

६०. वही, पृ.२४५

६१. Principles of Mahammadan Lw : D.F. Mulla, p.223

६२. The spirit of Islam : Amir Ali, p.257

६३. '५९' के अनुसार, पृ.२४६

६४. Marriage and Family in India, p.201

६५. '५९' के अनुसार, पृ.२४७-२४८

६६. वही, पृ.२४९

६७. वही, पृ.२४९-२५०

६८. वही, पृ.२५०-२५१

६९. वही, पृ.२५२

७०. T10 : 2-5-05, p.7

७१. '६९' के अनुसार, पृ.२६२

७२. वही, पृ.२६३-२६४